लोहागढ़ की यशोगाथा

लेखक

रामवीर सिंह वर्मा

प्रकाशक

प्रदीप प्रकाशन

सूरजमल नगर, निकट केन्द्रीय विद्यालय, भरतपुर (राज.)

सम्पर्क सूत्र : 05644-225544, 91-9414023584

©
रामवीर सिंह वर्मा
भरतपुर

प्रथम संस्करण - 2013
मूल्य : 500.00 रुपये

चित्र संकलन :–
गुलशन सिंह सोगरवाल

प्रकाशक:–
प्रदीप प्रकाशन
सूरजमल नगर, निकट केन्द्रीय विद्यालय
भरतपुर–321001 (राजस्थान)

मुद्रक :
चामड़ प्रोडक्ट
ई–88, रनजीत नगर, भरतपुर
मो. 9414026429

आवरण:
भरतपुर का किला
महाराजा सूरजमल

Lohagarh Ki Yasogatha

LOHAGARH KI YASOGATHA

By : Ramveer Singh Verma

₹500/-

विषय-सूची

क्र.सं.	प्रस्तावना	पृष्ठ संख्या
1.	आमुख	1 - 2
2.	भूमिका	3 - 8
3.	जाटों का गौरवशाली इतिहास	9 - 10
4.	जाट की परिभाषा क्या है ? जाट आर्य है, जाट क्षत्रिय है, जाट प्रचन्ड वीर है	19-32
5.	जाटों का मूल स्थान एवं प्रसार विदेशों में जाट, चीन तथा मंगोलिया में जाट, कुरूवंश, मद्रवंश, रूस में भारतीय जाट, यूरोप तथा अफ्रीका में जाट, जर्मन में जाट, ब्रिटेन (इग्लैण्ड) में जाट	33-48
6.	इस्लाम शासन और जाट शक्ति	49-51
7.	जाटों की चारित्रिक विशेषताऐं	52-58
8.	संसार में जाट शब्द के पर्याय	59-62
9.	ईसा से पूर्व जाट और उनकी स्थिति मौर्य वंश का शासन, शान्ति के अग्रदूत अशोक महान्, महारानी तोमरिश का सम्राट साइरस से युद्ध, जाटों का मिश्र पर हमला	63-68
10.	ईशा के पश्चात जाट शक्ति दाहिर सम्राट और मौहम्मद बिन कासिम, सुलतान महमूद गजनवी से जाटों का युद्ध, गजनवी का सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण, सुलतान कुतुबउद्दीन एवं जाटवान, अलाउद्दीन खिलजी और जाट, सुलतान महमूद तुगलक, भारत पर तैमूरलंग का आक्रमण, सम्राट बाबर, राणा संग्राम सिंह का बयाना पर कब्जा, तलाकनी मस्जिद, निर्णायक युद्ध की रणस्थली, सीकरी (खानुआ) का युद्ध, राणा का अन्तिम समय, महमूद अली, अजब सिंह भावड़ा, सम्राट शाहजहाँ के शासन में जाटों का प्रभाव, शाहजहाँ की राजस्व नीति का विरोध, मुर्शिद कुली खाँ तुर्कमान के वीभत्स अत्याचार, सम्राट औरंगजेब और जाट इतिहास, औरंगजेब की धार्मिक नीति का ब्रज प्रदेश पर प्रभाव	69-85
11.	वीरवर अमर ज्योति गोकुलसिंह	86-90
12.	निर्भीक नेतृत्व राजाराम अऊ के किले पर आक्रमण, सिनसिनवार तथा सोगरिया जाटों का संगठन, गोकुला की हत्या का प्रतिशोध	91-96
13.	युग निर्माता, संकट-वीर, देशभक्त ठाकुर चूडामन सिंह जाजऊ युद्ध और शाही दरबार में प्रवेश, बेताज का बादशाह चूडामन, थून राज्य के निम्रण की ओर तथा राजपूतों की हार	97-104
14.	वीरता और साहस का अग्रदूत : राजा खेमकरण सोगरिया बहादुर खाँ की उपाधि तथा जागीर, खेमकरण का साहसी प्रदर्शन और सम्मान, खेमकरन का पतन	105-111
15.	जाट राज्य का संस्थापक बदनसिंह सूरजमल के प्रारंभिक युद्ध, सूरजमल और सफदरजंग, कुम्हेर का घेरा, जवाहरसिंह का विद्रोह	112-132

क्र.सं.	प्रस्तावना	पृष्ठ संख्या
16.	भारतीय संस्कृति का रक्षक – जाटों का प्लेटो महाराजा सूरजमल	133–140
17.	महाराजा सूरजमल की उपलब्धियाँ	141–144
18.	आगरा का स्वामी और हरियाणा–विजयी महाराजा सूरजमल	145–148
19.	सूरजमल का अन्तिम युद्ध और अप्रत्याशित मृत्यु	149–152
20.	जवाहरसिंह का राज्यारोहण एवं नजीबुद्दौला के साथ संघर्ष	153–159
21.	विद्रोही जाट सरदारों का दमन	160–164
22.	मराठो के साथ सम्बन्ध जवाहरसिंह मल्हारराव, जवाहरसिंह और रघुनाथ राव, अब्दाली की पंजाब पर चढाइयाँ और जाट–मराठा सन्धि, जाट मराठा संघर्ष–जवाहरसिंह की निरन्तर विजय	165–170
23.	जवाहरसिंह और अंग्रेज बंगाल में अंग्रेजों का उत्थान, अहमदशाह अब्दाली का निरन्तर आतंक, अंग्रेजों का जवाहरसिंह के साथ मैत्री प्रयत्न, जवाहरसिंह ओर उसके यूरोपीय सेना नायक	171–175
24.	जवाहरसिंह का अन्त और उसका मूल्याकंन	176–179
25.	महाराजा रतनसिंह	180–181
26.	डीग का घेरा	182–184
27.	महाराजा केहरी सिंह	185–186
28.	महाराजा रणजीत सिंह जाट वीरों का अंग्रेजों से भरतपुर में एतिहासिक युद्ध	187–192
29.	महाराजा रणधीर सिंह	193
30.	महाराजा बल्देव सिंह	193–194
31.	महाराजा बलवन्त सिंह	195
32.	महाराजा जसवन्त सिंह	196–197
33.	महाराजा रामसिंह	197
34.	महाराजा श्री कृष्ण सिंह	198–200
35.	महाराजा बृजेन्द्र सिंह	201–209
36.	भरतपुर का राजवंश	210
	परिशिष्ट	
37.	राजा बदनसिंह की शादियाँ और सन्तानें	211–213
38.	मेवात : उपद्रव का एक आकर्षक क्षेत्र	214–219
39.	भरतपुर राज्य के नागा साधुओं की फौज	220–224
40.	अमर शहीद : राजा मानसिंह	225–230
41.	भरतपुर राज्य का महान् योद्धा करनसिंह माडापुरिया	231–236
42.	सन्दर्भ ग्रन्थ	237

आमुख

जाट और भरतपुर एक दूसरे के पूरक हैं, भरतपुर पर लिखने में जाटों की चर्चा के बिना भरतपुर के कोई मायने नहीं हैं। भरतपुर के लम्बे राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास में से लेखकों ने अभी तक कुछ पहलुओं तक ही अपने को सीमित रखा है। कुछ इतिहासकारों ने अपनी दृष्टि को संकुचित रखते हुये उनके क्षेत्र, कार्य एवं उपलब्धियों को भी पूरा स्पष्ट नहीं किया है। अंग्रेज इतिहासकारों ने तो उनकी वीरता से द्वेष रखते हुये, उन पर कोई महत्वपूर्ण लेखन कार्य ही नहीं किया, क्योंकि अंग्रेज जाटों के हाथों सन् 1805 ई. की अपनी पराजय को कभी भुला नहीं सके।

''दुर्ग भरतपुर अडिग जिमि हिमगिरि की चट्टान,
सूरज के तेज कौ, अब लौ करत बखान।''
''इह भरतपुर दुर्ग है, दुस्सह, दुर्जय, भयंकर,
जहाँ जट्टन के छोहरा, दिया सुभट्टन पछार
आठ फिरंगी, नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा''

लोक गीतों की ये कुछ पंक्तियाँ आज भी ब्रज प्रदेश में बड़ी शान और गर्व से गाई जाती है। राजस्थान किलो का घर है, यहां हर 50-60 किलोमीटर की दूरी पर कोई न कोई किला आपको दृष्टिगोचर हो जायेगा। भरतपुर के लोहागढ़ किले ने राजस्थान के ही नहीं अपितु देश के बड़े से बड़े किले की शान को धूल में मिलाया है। सतत् एक ही ध्वज फहराने का गर्व केवल लोहागढ़ का दुर्ग ही कर सकता है। मुसलमान, पठान, अफगान, अंग्रेज व अन्य कोई भी आक्रान्ता भरतपुर के लोहागढ़ दुर्ग के ध्वज स्तम्भ पर कभी भी भरतपुरिया पचरंगी ध्वज के अलावा अन्य ध्वज को फहरा नहीं सका। यह है लोहागढ़ यशोगाथा का जीवन्त प्रमाण!

जाटों के इतिहास पर अनेक लेखकों ने अपने गणमान्य, ग्रन्थों में एतिहासिक घटनाओं का विवेचनात्मक वर्णन किया है, जो सर्वथा स्तुत्य है। इतिहास का वस्तुपरक एवं प्रासंगिक लेखन हमेशा आवश्यक होता है और साथ ही उसका सजग अध्ययन भी। इतिहास की समीक्षा भी समय समय पर होना अनिवार्य है, और पिछले कई दशक से यह कार्य लगभग अवरूद्ध है। अनेक इतिहास ग्रन्थ अंग्रेजी में है और ये आसानी से सुलभ भी नहीं हो पाते। नवीन खोज सम्बन्धी सामग्री के उपलब्ध हो जाने से तथा जाटों की अन्र्तआत्मा एवं इतिहास की जानकारी जन जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया गया है।

मैं, पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ बताना चाहता हूँ कि मेरे इस लेखन का उद्देश्य, किसी भी प्रकार की जातीय संकीर्णता फैलाना नहीं है, वरन् इतिहास के उस तथ्य को उजागर करना है, जिसका निर्माण जाट-जाति ने किया है। भारत के इतिहास का यह सत्य है कि इस देश की स्वाधीनता एवं संस्कृति का संहार करके, अपने अधिकार की स्थापना के लिए, साइरस से लेकर अंग्रेज जनरल लॉर्ड लेक तक, कई आक्रमणकारियों ने, यहाँ की भूमि को रक्त से रंगा है, हत्या, अपहरण और उत्पीड़न की चीत्कारों से आकाश को भरा है। इसके विपरीत जाटों ने प्रत्येक आक्रमणकारी को रोका है, उससे संघर्ष किया है, उसको मारा है, वे खुद भी मरे हैं पर

मिटे नहीं। यही बात तो जाटों को सबसे अलग करके उसके इतिहास को गौरवशाली बनाती है, जिस पर हमें गर्व है।

जाटों की देशभक्ति, राष्ट्रीय संकटों के समय उनके द्वारा निवाही गई गहरी देशभक्ति और सामाजिक समस्याओं के प्रति अपनाये गये प्रगतिशील दृष्टिकोण पर भारत को गर्व है। जाटों की सोच एवं शासन प्रणाली धर्म जाति या वर्ग भेद जैसी संकीर्णता की न होकर समानता और निरपेक्षता की रही है। जाति को संकीर्ण अर्थो में न रखकर उसे उदारता से देखना चाहिए। जाट इतिहास में यह बहुत महत्व की बात है, यहाँ जाट जाति का किसी अन्य जाति से जातीय आधार पर कभी संघर्ष नही हुआ। यह दृष्टिकोण आज के सन्दर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो गया है, जब जाति की विकृत अर्थो में व्याख्या की जाती है और उसे अन्य जातियों के विरोध में देखा जाता है। हमें इन विकृत अवधारणाओं से बचना चाहिए।

वर्तमान जीवन की व्यस्तता एवं कम समय में अधिक जानकारी प्राप्त करने की प्रवृत्ति के कारण विशद ग्रन्थ एवं इतिहास की मोटी पुस्तकों को हर व्यक्ति नहीं पढ़ सकता। ''लोहागढ़ की यशोगाथा'' ग्रन्थ आम आदमी तक पहुँचे, चर्चा एवं अध्ययन का विषय बने, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, कम शब्दों के माध्यम से अधिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। मैंने पाठक को सन्दर्भ ग्रन्थों के वर्णनात्मक शब्द जाल से दूर ले जाकर एक जीवन्त वर्णन से जोड़ने का प्रयास किया है।

बड़ों से मेरी विनती है कि वे मेरी त्रुटियों को क्षमा करे और मुझे प्रोत्साहित करें, तभी मेरी सेवा लाभप्रद हो सकती है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्यमान त्रुटियाँ मेरी अल्पज्ञता का परिणाम है। सुधी विद्धजन मेरे इस बाल प्रयत्न का स्नेहदृष्टि से अवलोकन करेंगे, यही मेरी लालसा है।

विद्वान न होने पर भी वैसा करने की धृष्टता कर रहा हूँ। जाटों एवं विशेषकर अविजित लोहागढ़ के बारे में लिखने का मेरा लालच वैसा ही है, जैसे कोई बिल्ली विशाल सागर को अपनी जीभ से चाट जाने की तृष्णा करे। फिर भी मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ से पाठकों को जाटों की अन्तरात्मा की अनुभूति होने में सहायता मिलेगी। ग्रन्थ में रही त्रुटियों और तथ्यों, तर्को व निष्कर्षो को सुधारने के लिए दिये गये किसी भी सुझाव का मैं खुले दिल से स्वागत करूंगा।

मैं उन इतिहासकारों एवं लेखकों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनकी बहुमूल्य रचनाओं से ग्रन्थ लेखन में सहयोग मिला है। जिला सरपंच एसोसियेशन भरतपुर के अध्यक्ष रज्जनसिंह सरपंच, ताखा एवं फरीदाबाद के उद्योगपति एवं नदबई के समाज सेवी वृजेन्द्र सिंह देशवाल का हृदय से आभार जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ आप तक पहुँचा है। ग्रन्थ को समुचित रूपाकृति प्रदान करने में उत्साह, संवर्धन, सहयोग जैसी अमूल्य निधि मुझे इन्हीं से प्राप्त हुई। ल्युपिन के निदेशक एवं भरतपुर के विकास को समर्पित सतत् प्रयत्नशील व्यक्तित्व सीताराम गुप्ता ने मेरे निराशा के क्षणों को आशा एवं क्रियान्विति प्रदान की, उनको भी हृदयतम से आभार व्यक्त करके भी उऋण नहीं हो सकता। प्रकाशन में चामड़ प्रोडक्ट के निदेशक देवेन्द्र गुप्ता के प्रशंसनीय सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

रामवीर सिंह वर्मा

19 फरवरी 2013, भरतपुर स्थापना दिवस
भरतपुर (राज.)

भूमिका

जाटों ने अपनी वैभवशाली परम्परा एवं वीरोचित कार्यो से इतिहास के कुछ पृष्ठों पर साधिकार आधिपत्य किया है। जाट सदैव शौर्य एवं वीरता के प्रतीक रहे हैं। जाटों की उत्पत्ति के विषय में पौराणिक कथाकारों, उनके जागाओं (प्रशस्तिकार) धार्मिक ग्रन्थकारों तथा विभिन्न भारतीय और विदेशी इतिहासकारों ने अपने मत दिये हैं। जाटों की उत्पत्ति का विषय कुछ लेखकों एवं पुराणकारों ने ईर्ष्यावश, अज्ञानता के कारण और कुछ जाटों के विद्रोही स्वभाव तथा स्वतन्त्र विचार के कारण इस जाति को हीन सिद्ध करने के उद्‌देश्य से, इरादतन, मन गढ़न्त ऐतिहासिक तथ्यों तथा कल्पना से काम लिया है। कुछ लेखक जाटों को आर्यो की सन्तान मानते हैं, कुछ हैहय क्षत्रियों की स्त्रियों के गर्भ से ब्राह्मणों द्वारा उत्पन्न घोषित करते हैं, कुछ इन्डो-सिथियन जातियों के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित करते हैं, कुछ शिव की जटा से उत्पन्न मानते हैं, कुछ युधिष्ठर की पदवी ''ज्येष्ठ'' से जाट उत्पन्न हुआ मानते हैं, कुछ ''जटित्का'' को जाट जाति का आदि स्त्रोत ठहराते हैं, कुछ इन्हें विदेशों से आया हुआ जिट, जेटा एव गात (जात) मानते हैं तो कुछ इनको ययाति पुत्र 'यदु' से सम्बन्धित मानते हैं और कुछ इनका अस्तित्व पाणिनि युग पूर्व मानते हुए आर्यो के साथ इनका अभिन्न सम्बन्ध स्थापित करते हैं। लेखकों का यह षड्‌यन्त्र जाटों की उत्पत्ति तक ही सीमित नहीं है, उनके प्राचीन, मध्यकालीन तथा वर्तमान ऐतिहासिक महत्व के बारे में भी निरन्तर जारी है। उनकी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भूमिकाओं को भी समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय इतिहास साक्षी है कि देश को जब-जब क्षत्रिय-भावना प्रधान वीर युवकों की आवश्यकता हुई तब-तब इस जाट जाति ने देश की सेवा में अपने नौनिहालों का बलिदान करने के अमर उदाहरण उपस्थिति किए। आप पढ़ेंगे कि इन महान क्षत्रिय समुदायो का 'जाट' नाम कब से और कैसे पड़ा जो कि प्राचीन, मध्यकालीन तथा वर्तमान तक भी अपनी वीरता, धीरता, और योग्यता के कारण लोक प्रसिद्ध हुए तथा जिनके वैभव और ऐश्वर्य की पवित्र गाथाऐं आज भी संसार के इतिहास में श्रद्धा और शोभा की चीज समझी जाती है। कर्नल जेम्स टाड के शब्दों में ''आज के जाटों को देखकर अनायास ही यह विश्वास नहीं होता कि ये जाट उन्हीं प्रचण्ड वीरों के वंशज है, जिन्होंने एक दिन एशिया और यूरोप को हिला दिया था।''

इसमें तलवार चलाने व हल चलाने की समान चतुराई है। जाट वीरों के एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में हल की मूठ रहती है। प्राचीन काल में जाटों ने तीर व तलवार का बल दिखाकर और हल चलाकर, एशिया और यूरोप की भूमि पर, पूर्व में मंगोलिया और चीन, पश्चिम में स्पेन और इंग्लैण्ड, उत्तर में स्कैण्डेनेविया और नौबोगौर्ड और दक्षिण में भारतवर्ष, ईरान और मिस्त्र की भूमि पर 'जाट बलवान, जय भगवान' का रणघोष लगाकर अपने नाम की प्रसिद्धि की है।

धर्म समाज तथा शासन के नाम पर जनता का शोषण करने वाले राजा तथा ब्राह्मणों के गठबन्धन को चुनौती देने वाले, उनकी धार्मिक मान्यताओं को ठुकरा देने वाले, उनकी बिना

कमाये खाने की नीति का घोर विरोध यदि किसी ने किया है तो वह जाट ही थे। जाटों ने न राजसत्ता के सामने मस्तक झुकाया था और न धर्म की सत्ता के सामने। जाट तो उन आर्यो की सन्तान हैं, जिन्होंने न धर्म की परतन्त्रता को स्वीकार किया था और न राजतन्त्र की गुलामी को, बिना परिश्रम किये पोथी-पत्रा के बल पर जीविका कमाने वाले पुरोहितों और अपने स्वार्थो की सिद्धि तथा सामाजिक-व्यवस्था में वर्चस्व बनाये रखने के उद्‌देश्य से राजा को भगवान का अवतार मानने वाले पुरोहित (ब्राह्मण) के शासन को आर्यो की सन्तान जाटों ने कभी स्वीकार नहीं किया, यही कारण है कि इन आर्यो की सन्तानों को पुराणकारों ने म्लेच्छ, नास्तिक, असुर एवं शूद्र तथा चाण्डाल तक कहा है।

जिस प्रकार तत्कालीन भ्रष्ट तथा विदेशी शासन का विरोध करने वालों को इतिहासकारों ने राजमार्गो पर लूट-पाट करने वाला कहा हैं, ठीक उसी प्रकार इन धर्म के ठेकेदारों और ईश्वर का अवतार बने राजाओं का विरोध करने वाले जाटों को भी मलेच्छ और न जाने क्या-क्या कहा है। जब आर्यो के एक समुदाय ने अपने समुदाय के दूसरे लोग, जिनके एक हाथ में पुरोहित की कलम और दूसरे हाथ में राजा की तलवार की आज्ञा माननी बन्द कर दी एवं उनके जन विरोधी धर्म तथा शासन को खुलेआम चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया, इससे कुपित होकर उसने भी विद्रोही वर्ग की सामाजिक व सांस्कृतिक प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक प्रभुता को समाप्त करने का इरादा कर लिया। इतिहासकार लिखते हैं-विद्रोहियों का विनाश तलवार और कलम दोनों से होता रहा अपने स्वार्थ के लिए ऐतिहासिक सत्यों पर भी परदा डाल दिया गया और इस प्रकार उनको जहाँ कही अवसर मिला इन विद्रोहियों की सामाजिक स्थिति को नीचा किया। इसका सबसे अधिक प्रभाव जाटों पर पड़ा। अन्य लोग भी प्रभावित हुए, किन्तु उन्होंने किसी न किसी स्तर पर राजा तथा पुरोहित से समझौता करके दासता का जीवन जीया, पर जाटों ने गुलामी को किसी भी स्तर पर नहीं स्वीकारा। वे अपने भाई, आर्यो से भी संघर्ष करते रहे और हिन्दुस्तान पर आक्रमणकारी विदेशी विधर्मियों से भी। जाटों ने संघर्ष, साहस एवं वीरता के बल पर अपनी सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा बनाई।

जाटों की उत्पत्ति एवं शौर्य पराक्रम के अनेकों उदाहरण इस पुस्तक में लिखे हैं, जिन्हें पढ़कर बुद्धिमान पाठक सहज ही अनुमान लगा लेंगे कि इस बहादुर किन्तु भोली कौम के वास्तविक इतिहास को छिपाकर, तोड़ मरोड़कर जैसा चाहा वैसा लिखा गया है। आज भी अधिकतर लोग उन्हीं लेखों को ठीक मानते हैं जो विद्यालय तथा महाविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं, उनमें जाटों के शौर्य पराक्रम एवं वीरता तो दूर उनके ऐतिहासिक युद्धों एवं बलिदानों का नाम तक नहीं है। यही कारण है कि इस जाति के विद्यार्थियों शिक्षकों, बुद्धिजीवियों, उच्च पदासीन अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों में कुछ को छोड़कर अधिकतर लोगों को अपने जातीय इतिहास की कुछ भी जानकारी नहीं है। इसी कारण मैंने यह पुस्तक लिखी है कि हर व्यक्ति इस जाति के प्राचीन एवं मध्य कालीन इतिहास को जाने तथा वर्तमान इतिहास को ऐसा रचे कि हमारे आने वाली पीढ़ी इसी प्रकार हम पर गर्व करे जिस प्रकार हम अपने पूर्वजों पर कर रहे हैं।

इस वीर तथा साहसी जाट जाति के उत्पत्ति के सिद्धान्तों को मूलतः दो भागों में बांटा जा सकता है :-

1. पौराणिक कथाओं के आधार पर उत्पत्ति का देशी सिद्धान्त।

2. विदेशी उत्पत्ति का सिद्धान्त।

पाठक पौराणिक कथाओं के आधार पर देशी उत्पत्ति के सिद्धांतों में पहला सिद्धान्त पं० अंगद शास्त्री का 'जठरोत्पत्ति' का सिद्धान्त पढ़ेंगे। इसमें कहा गया है कि परशुराम द्वारा पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर देने पर बची क्षत्रिय महिलाओं का ब्राह्मणों के साथ संयोग हुआ और उनसे जो सन्तान पैदा हुई वह जठर अर्थात् पेट से उत्पन्न होने के कारण जाठर, जाटर या जाट कहलाई। इस सिद्धान्त में कई अवैज्ञानिकतायें हैं - प्रथम सन्तान की जाति साधारणतया पिता की जाति पर जानी जाती है, माता की जाति पर नहीं। द्वितीय क्षत्राणियां अपने कुल घातक ब्राह्मणों के पास सन्तान उत्पत्ति हेतु जाने का प्रश्न ही नहीं है, तृतीय हर बालक माता के जठर (गर्भ) से जन्म लेता है। इस स्थिति में ब्राह्मण तथा अन्य जातियां जाठर क्यों नहीं मानी गई ?अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि राजा तथा पुराहित की नीति तथा व्यवस्था को चुनौती देने वाले वर्ग को अपमानित करने के उद्देश्य से इस सिद्धान्त की मनमर्जी कल्पना की गई है।

जाट जाति की उत्पत्ति का दूसरा सिद्धान्त 'ज्येष्ठ' से उत्पत्ति का माना गया है। शब्द की ध्वनि समानता के आधार पर की गई जाटों की यह उत्पत्ति न तो भाषा विज्ञान और न नृ-वंश विज्ञान के आधार पर शुद्ध प्रमाणित होती है। तीसरा सिद्धान्त शिव और उनकी जटा से सम्बन्धित है यह भी एक काल्पनिक तथा अवैज्ञानिक कथा है। इसमें अवैज्ञानिकता यह है कि जटाओं से प्राणियों का जन्म नहीं होता। जाटों की उत्पत्ति का चौथा सिद्धान्त 'जरित्का' का सिद्धान्त माना गया है। इस सिद्धान्त की सभी विद्वानों ने आलोचना की है। पांचवा सिद्धान्त 'जट' धातु से उसकी उत्पत्ति का है। पाणिनि ने इसका अर्थ 'संघ' बताया है। यह सत्य है कि जाट जाति हमेशा संघ बनाकर रही है।

उसके इस स्वभाव को देखकर जाट शब्द को 'जट' धातु से उत्पन्न मान लिया गया। पंजाब में जाट को आज भी 'जट्ट' या 'जट्टा' कहा जाता है। 'पगड़ी संभाल जट्टा' पंजाब का प्रख्यात लोक गीत है। जाट जाति की उत्पत्ति का छठा सिद्धान्त 'यदु' से उत्पत्ति का है तथा सातवां सिद्धान्त 'जात' या 'सुजात' शब्द से उनकी उत्पत्ति का है। इसके अनुसार जाट हैहय वंशी क्षत्रियों की उन शाखाओं की सन्तान है जो कभी 'जात' अथवा 'सुजात' के नाम से प्रसिद्ध थी। जाटों की उत्पत्ति विषयक आठवां सिद्धान्त 'यात' उत्पत्ति वाला है। श्री राम लाल हाला की मान्यता है कि चन्द्र वंश में कृष्ण से पहले 'यात' नामक एक राजा हुए हैं। जाट उनकी सन्तान है। इनका कथन है कि यात से याट और याट से जाट शब्द बना है।

जाटों की स्वदेशी उत्पत्ति विषयक इन आठ सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। इनसे मात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि जाट आर्यो की ही सन्तान थी, जो न धर्म की सत्ता अर्थात् पुरोहितों की धार्मिक रूढ़ियों का आँख बन्द करके पालन करती थी और न राजसत्ता के सामने घुटने

टेकती थी, स्वतन्त्रता उसके स्वभाव का विशेष गुण था जो आज भी बरकरार है।

जाटों को विदेशी अर्थात् बाहर से आया हुआ और आर्यों से भिन्न जातियों की सन्तान ठहराने का काम पहले विदेशी इतिहासकारों ने किया, तत्पश्चात उनका अन्धानुकरण भारतीय इतिहासकारों ने किया। इस दिशा में कर्नल टौड ने नितान्त भ्रामक सिद्धान्त को जन्म दिया। डा० ट्रम्प तथा जीम्स ने कर्नल टौड के सिद्धान्त को निरर्थक घोषित किया। विलियम फाउलर ने शारीरिक संरचना को व्यक्ति या जाति की असली पहचान बताते हुए जाटों को आर्य घोषित किया है।

मि० स्मिथ के इस कथन के वाद ''विजेता हूणों में से जिनके पास राज्य शक्ति आ गई थी वे राजपूत और जो कृषि करने लग गये वे जाट और गूजर है'', जाटों को हूणों की सन्तान माना जाने लगा। सी० बी० वैद्य ने ''हिस्ट्री ऑफ मिडीवेल हिन्दू इण्डिया'' में स्मिथ के उक्त विचार का विरोध किया है। चन्द्र नामक वैयाकरण ने पाँचवी शताब्दी में लिखी अपनी व्याकरण की पुस्तक में ''अजय जर्टो हूणान'' लिखकर जाटों का उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है कि जाटों ने हूणों पर विजय प्राप्त की थी तथा जाट न तो हूणों के मित्र थे, न उनकी सन्तान थे, वरन उनके घोर शत्रु तथा पराजित करने वाले थे।

इतिहासकार जाटों को आर्य व भारतीय प्रमाणित करते हुए कहते हैं कि वर्तमान खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि आर्य लोग भारत के बाहर भी अन्य कई देशों में बसते थे। पारसियों से पहले मिलने वाले मीडियावासी आर्य कहलाते थे, ईरान में आर्य थे, दारह बहु के पुत्र क्षयार्ष की सेना में आर्यों की टुकड़ियां थी, सिकन्दर के समकालीन इतिहासकार सिन्धु नदी के दाहिने तट पर बसे लोगों को आर्य कहते थे। इससे दो बाते स्पष्ट होती है – प्रथम यह कि पंचनद प्रदेश से लेकर गंगा यमुना के कांठे में बसे और केवल वेदमार्गी ही आर्य नहीं थे और लोग भी आर्य थे। द्वितीय यह कि आर्य भारत में बाहर से आए थे। उनका यह आगमन दो वार हुआ था। दूसरे बार आई जन जातियों के समूह ने, पहली बार आये आर्यों के साथ घमासान युद्ध किया। जिन लोगों ने इन नये आये लोगों के सामने सिर झुका दिए तथा अपनी बहन–बेटियाँ देकर सम्बन्ध कायम कर लिए, वे यक्ष, किन्नर तथा देव की उपाधियों से विभूषित किए गये। जिन लोगों ने इनका सामना किया, उनको राक्षस तथा असुर कह दिया गया। इस प्रकार कालान्तर में देश तथा परिस्थिति के अनुसार मानव जाति आर्य, अनार्य, देव तथा दानवों में विभक्त हो गई। मूल रूप में सब एक थे। अत: मानव इतिहास का तर्क संगत अध्ययन यह सिद्ध करता है कि जाट आर्य है, जाटों की शारीरिक संरचना, भाषा तथा बोली उन्हें आर्य प्रमाणित करती है। वे स्वतंत्रता प्रेमी तथा लोकतन्त्र के प्रति आस्थावान आर्य है। धर्म, समाज तथा सत्ता के आडम्बरों से उनको हमेशा विरोध रहा है।

यह तय है कि जाट आर्य है, क्षत्रिय है और प्रचण्ड वीर हैं। संसार के विभिन्न देशों में जाट प्राचीन काल से आज तक निवास व शासन करते आए हैं। यह एतिहासिक तथ्य हैं कि जाट चिरकाल से हिन्दुस्तान की सीमा की रक्षा करते आए हैं। भारत पर जितने भी प्राचीन आक्रमण

हुए उन सबका किसी न किसी रूप में जाटों पर प्रभाव पड़ा क्योंकि यही लोग सीमा प्रान्त, सिन्ध तथा पंजाब क्षेत्र में बसे हुए थे। इन्होंने हर विदेशी आक्रान्ता से न्यूनाधिक लड़ाई लड़ी। उन आक्रान्ताओं ने जो विवरण छोड़े हैं, उनमें अधिकतर जाटों को लुटेरा, बर्वर तथा विद्रोही लिखा है। उस समय या तो इन आक्रमणकारी अथवा उनके आश्रितों द्वारा ही इतिहास लेखन का कार्य किया गया। इन्हीं लेखों अथवा संस्मरणों के आधार पर आधुनिक इतिहासकारों ने अपनी मिथ्या धारणा बना ली कि जाट बर्बर, असभ्य तथा लुटेरे हैं।

इन मिथ्या आरोपों का तर्कपूर्ण विरोध कभी भी जाटों द्वारा नहीं किया गया क्योंकि ये इन अनर्गल लिखी बातों को ज्यादा महत्व नहीं देते थे तथा अधिकतर को यह पता भी नहीं था कि इन पोथी पत्रा व पुस्तकों में हमारे बारे में किसने क्या लिखा है! जब कभी इनसे कोई कहता कि अपना इतिहास लिखो अथवा लिखवाओं तो इनका एक ही उत्तर होता था कि हम तो इतिहास का निर्माण करेंगे। इतिहास लिखने का काम दूसरे करेंगे। इनकी यह कमी थी कि इन्होंने कभी अपने यहां लेखकों, कवियों, चारण एवं भाटों को आश्रय नहीं दिया। यह तो यही कहते रहे कि सच्चरित्र ही सच्चा इतिहास है। इन्होंने कभी यह विचार तक नहीं किया कि समाज में लेखनी क्या-क्या गजब ढहा सकती है। इनका ध्यान तलवार और हल की मूठ पर ही रहा, लेखनी अथवा कलम की कभी परवाह ही नहीं की कि कलम पानी में भी आग लगा सकती है, वह लुटेरे को साहूकार, देशभक्त को गद्दार तथा देशद्रोही को सच्चा देशभक्त का स्थान देकर समाज में उसका स्थान बना व बिगाड़ सकती हैं।

भारतीय इतिहास में जाटों की जो उपेक्षा की गई है, उसके दोषी जाट स्वयं भी किसी से कम नहीं हैं। जाटों ने लेखकों का कभी सम्मान नहीं किया और न खुद लिखा। पीढ़ियों से इनके दो ही काम रहे, देश की पुकार पर युद्ध करना और शान्ति के समय हल चला कर, अन्न पैदा कर देशवासियों का पेट भरना। आज जाटों में पढ़े लिखों की कमी नहीं हैं। साधनों की भी कमी नहीं है। उनमें शक्तिशाली पुरूष है। पर क्या उनमें कोई ऐसा माई का लाल है जो अपने जीवन को इस महान कौम हेतु शोध में लगा दे ?क्या जाटों की कोई संस्था है जो ऐसे व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं की व्यवस्था कर सके ?ईरान से इलाहाबाद तक के विशाल भू-खण्ड में जाटों के वीरत्व-पूर्ण बलिदानों की कहानियाँ चप्पा-चप्पा भूमि में बिखरी पड़ी है, उनको एक कड़ी में पिरोने वाला चाहिए।

जाटों के पास पूर्व में न उनका कोई सुगठित राज्य था और न श्रेष्ठ सैनिक शक्ति थी और न प्रचुर मात्रा में धन ही था। उनके पास मात्र देश प्रेम और जातीय संगठन था जिसके बल पर उन्होंने हर विदेशी आक्रमणकारी को युद्ध के लिए ललकारा और पराजित किया। उस समय के लेखकों ने जैसा देखा वैसा नहीं लिखा वरन् जैसा चाहा वैसा लिखा, जाटों के पास कोई लेखक व इतिहासकार नहीं था जो सच्चा वर्णन करता जिन्होंने सच्चा इतिहास लिखा उसे या तो इन ईर्ष्यालुओं ने नष्ट कर दिया या विलुप्त करा दिया।

हिन्दुस्तान के सम्राटों ने कई बार इस बहादुर जाट कौम के कत्लेआम के फरमान जारी किये किन्तु न तो उनकी तलवार इस कौम को समाप्त कर सकी और न इनके अन्दर स्फुटित देशभक्ति पूर्ण क्रांति के कांटे को उखाड़ सकी। जब शासकों ने इस कौम को समाप्त करने में अपने को अशक्त पाया तो उन्होंने क्रोधावेश में जाटों के बारे में अनर्गल लिखकर अपने क्रोध को शान्त किया। इतिहास साक्षी है कि जिस समय भारत के अधिकांश राजा महाराजा मुगल दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे उस समय क्रांतिकारी जाट दिल्ली के चारों ओर तलवार चला रहे थे। भारत माता तथा माँ-बहिनों की मान मर्यादा एवं सम्मान के लिए प्राणों की आहूति दे रहे थे। जाटों के इन साहसिक एव वीरता पूर्ण कार्यो को शासकों ने मनमर्जी से जैसा चाहा लिखा और आधुनिक इतिहासकारों ने अन्धानुकरण किया।

सारांश यह है कि जाट आर्य है, क्षत्रिय है, प्रचण्ड वीर है। भारत में बहुत प्राचीन काल से रहते आये हैं। जाटों ने तिब्बत, यूनान, अरब, ईरान, तुर्किस्तान,चीन ब्रिटेन, जर्मनी, साईबेरिया, स्कोण्डिनेविया, इंग्लैण्ड, रोम व मिश्र आदि में कुशलता, दृढ़ता और साहस के साथ राज्य किया था और वहाँ की भूमि को विकासवादी उत्पादन के योग्य बनाया था। मालवा, राजस्थान पंजाब, हरियाणा तथा गंगा-जमुना का कांठा उनका मूल निवास स्थल है। विदेशी आक्रमणकारियों से उन्होंने देश को बचाया है। हूणों की परास्त किया है। देश और समाज की प्रगतिशील संस्कृति के निर्माण में उन्होंने महान योग दिया है। राजा तथा पुरोहित के गठबन्धन को तोड़ा है। इस संघर्ष में वे स्वयं भी टूटे हैं, लेकिन मिटे नहीं।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने 22 अक्टूबर 1943 ई० को सिंगापुर आजाद हिन्द रेडियों से अपने भाषण में कहा था कि "Let us Create history, Let some body else write it" अर्थात्।

''आओ हम तो इतिहास का निर्माण करे, इतिहास लिखने का काम दूसरों के लिए छोड़ दें।''

इसी भावना को रखकर जाटों ने इतिहास का निर्माण किया है जिनकी बहादुरी को सारा संसार जानता है। इतिहास लिखना दूसरों का काम था। दूसरे लोगों ने यदि इस बहादुर लेकिन सीधी भोली कौम के साथ ना-इन्साफी की है तो इसमें जाटों का क्या दोष ?अब इस कौम को इतिहास बनाने के साथ-साथ इतिहास भी लिखना होगा, जिससे कोई मक्कार इतिहासकार इनकी छवि एवं साहसिक कार्यो को गलत तरीके से पेश करने का पुनः दुस्साहस न कर सके।

भरतपुर (राज.)
26 जनवरी, 2013

रामवीर सिंह वर्मा

जाटों का गौरवशाली इतिहास

इतिहास समाज का दर्पण है। किसी देश अथवा जाति के उत्थान, पतन, मान, अपमान, उन्नति, अवनति आदि की पूर्ण व्याख्या उसके इतिहास को पढ़ने से हमको भली-भाँति विदित हो जाती है। जिस देश अथवा जाति को नष्ट करना हो तो उसके साहित्य एवं इतिहास को नष्ट कर देने से वह हजारों सैकड़ों वर्षो तक पनप नहीं सकेगी। भारत के सम्बन्ध में यही बात सत्य सिद्ध हुई है।यह सर्व मान्य सिद्धान्त है कि जिस जाति का जितना ही गौरवपूर्ण इतिहास होगा वह जाति उतनी ही सजीव होगी। इसी कारण विजेता जाति पराजित जाति के इतिहास को या तो बिल्कुल नष्ट करने का प्रयत्न करती है जैसा कि भारत में मुगल, पठान शासकों ने किया था, अथवा ऐसे ढंग से लिख देती है जिससे उस जाति को अपने पूर्वजों पर गौरव करने का उत्साह न रहे। यह कार्य-अग्रेंजों ने किया।

हम क्या थे और क्या हो गये हैं ?यह इतिहास हमें बताता है। वे गलतियां जिनके कारण उस कौम का पतन हुआ है, फिर न हो इसका बोध तथा शिक्षा हमें इतिहास से ही मिलती है। उन्नतिशील इतिहास ही किसी देश अथवा जाति को उन्नति एवं प्रगति के पथ पर ले जाता है। लार्ड मैकाले लिखते हैं - "A people which takes no pride in the noble achievements of remote ancestors will never achieve any thing worthy to be remembered with pride by remote descendants"

अर्थात् जो जाति अपने पूर्व पुरूषों के अच्छे कार्यो का अभिमान नहीं करती वह जाति कोई ऐसे महान कार्य नहीं कर सकती जो कि कुछ पीढ़ी बीतने पर उनकी सन्तति द्वारा गौरव या अभियान के साथ स्मरण करने योग्य है। History is the light of truth and the teacher of life.

इतिहास सत्यता का प्रकाशन और जीवन का शिक्षक है "A nation that forgets the glory of its past, loses the mainstay of its national character. जो जाति अपने प्राचीन यश (गौरव) को भूल जाती हैं वह अपनी जातीयता के आधार स्तम्भ को खो बैठती है।

अत: इतिहास ही वह संजीवनी है जिससे सूखी हड्डियों में भी रक्त की धारा बहने लग जाती है। जिस प्रकार समस्त भारत विदेशी ताकतों द्वारा पराजित हुआ था उसी भांति जाट जाति भी कुछ देशी विदेशी शक्तियों द्वारा धोखाधड़ी अथवा बहादुरी से जीत ली गई। एशिया और यूरोप में अपने वीरतापूर्ण कार्यो से तहलका मचा देने वाली जाट जाति भी छठी शताब्दी के बाद मुसलमानों और राजपूतों द्वारा जीत ली गई। सातवीं शताब्दी में चच नामक ब्राह्मण मन्त्री ने अपने जाट नरेश के साथ विश्वासघात करके उसके सिंध राज्य को छीन लिया। अन्य छोटे-मोटे

पंजाब, सिन्ध, संयुक्त प्रान्त, गुजरात, दक्षिण भारत और कश्मीर के जाट राज्य मुसलमानों ने जीत लिए। राजस्थान और मध्य प्रदेश के जाट राज्य नई हिन्दू सभ्यता से मण्डित राजपूतों ने हथिया लिये। यदि पंजाब, भरतपुर और धौलपुर में जाट फिर राजशक्ति प्राप्त न करते तो इनका सामाजिक पद आज के स्थान पर न रहता।

चूंकि जाट पराजित हो चुके थे अतः इनके वास्तविक इतिहास को अन्धकार में डालने तथा दूसरा ही रूप देने की विचित्र कार्यवाहियाँ की गई। जगा, चारण और भाट जिनकी उन दिनों सभी उपयोगिता मानते थे, उनकी पोथी व वहियों में जाटों को दोगला, राजपूत की औलाद और न जाने क्या-2 लिख डाला आदि सृष्टि से ही जाटों का इतिहास महान है परन्तु इन्होंने अपना कोई इतिहास लिखा ही नहीं इनके बारे में जब अन्य लोगों ने अनर्गल बातें लिखी तो इन्होंने इसे गंभीरता से लिया ही नहीं और कहा कि 'कागो के कोसे ढोर नहीं मरते' अर्थात् हमारे बारे में कोई कुछ भी कहे व लिखे हम पर क्या-फर्क पड़ता है। इनकी इस गलती के लिए मि० ग्राउस साहब ने इनको काफी फटकारा है। एक विदेशी इतिहासकार के अनुसार ''जब जाटों से यह कहा जाता है कि अपनी स्मृति के लिए कोई स्तूप, लेख अथवा स्मारक खड़ा करवाइयें, तब उनका उत्तर होता है कि सच्चा स्मारक तो सद्‌गुण होता है।''

जाट शब्द का मन में विचार आते ही या सुनते ही अथवा जाट वीर की चाल ढाल देख कर प्रत्येक मनुष्य को सहज ही बोध हो जाता है कि वास्तव में जाट एक कुशल योद्धा, निडर तथा वीर सैनिक, साहसी, परिश्रमी, चरित्रवान और देशभक्त नागरिक है। इतिहास साक्षी है, जब कभी भी देश को कुर्बानी की आवश्यकता हुई जाट कौम के नौनिहालों ने अपने आपको बलिदान कर दिया है। 'जाट' नाम कब से और कैसे पड़ा। जाट उत्पत्ति आदि वर्णन इस प्रकार है -

जाटों की उत्पत्ति (Origin of Jats)

पं. अंगद शास्त्री ने सन् 1872 ई० में 'जाठरोत्पत्ति' नामक एक संस्कृत पुस्तक जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखी थी। अनेक विद्वानों ने पुस्तक लिख कर जाटों की उत्पत्ति के बारे में लिखा है। विद्वानों ने अपने-अपने अनुमानों से, इच्छाओं से पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर अपने विचार लिखे हैं। जाठरोत्पत्ति ग्रन्थ में पुराणों की परशुराम, सहस्त्रवाहु, अर्जुनवाली कथा का उल्लेख करके कहा गयाहै कि परशुराम जी (सुपुत्र ऋषि जमदाग्नि) ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने हेतु 21 वार क्षत्रियों से युद्ध करके उनको समाप्त कर दिया। इस प्रकार पृथ्वी क्षत्रीय विहीन हो गई तो सहस्त्रों राजकन्याओं ने ब्राह्मणों से वीर्य दान लिया। उन क्षत्राणियों के पेट से पैदा होने के कारण वे सन्तानें जाठर कहलाई। उनके वंशज ही जाट है। (संस्कृत में पेट को जाठर कहते हैं) और वे जाठर दक्षिण भारत को छोड़कर उत्तर में हिमालय के अंचल में जाठर देवकूट पहाड़ में रहने लगे। जाठर लोगों के बसने से ही इस पहाड़ का नाम जठर पड़ गया।

पं० अंगद शास्त्री के इस विचार का समर्थन चौधरी लहरी सिंह वकील मेरठ ने अपनी

पुस्तक 'इंथनोलोजी आफ दी जाट्स' (The Ethnology of the Jats) में किया है। यह लेखक भी जाट शब्द की उत्पत्ति जाठर से लिखता है, परन्तु उसने जाठरों को विदेशी कहा है।

जाट क्षत्रिय इतिहास के लेखक वाई.पी. शास्त्री और कालिका रंजन कानूनगो ने लिखा है कि ''अंगद शास्त्री और लहरीसिंह की यह कल्पना मूर्खतापूर्ण है कि परशुराम ने पृथ्वी से सभी क्षत्रियों को समाप्त कर दिया तो क्षत्रिय माताओं और ब्राह्मण पिताओं के मिलाप से जाट पैदा हुए।''

इसी विषय में डी.डी. कोसमवी का कहना इस प्रकार है - ''ब्राहणों की विशेष कल्पना यह थी कि जब परशुराम जी ने क्षत्रियों को 21 बार नष्ट कर दिया तब पृथ्वी क्षत्रियों से खाली हो गई। ऐसा होने पर क्षत्रियों की पत्नियाँ सन्तान पैदा करने हेतु ब्राह्मणों के पास गई। इस तरह मिलाप करने से उनके जाठर (गर्भाशय) से जो बालक उत्पन्न हुए वे जाठर यानी जाट कहलाये। पं० अंगद शास्त्री की यह कल्पना करने का विचार स्पष्ट मूर्खतापूर्ण है। सबसे प्रथम बात तो यह है कि पृथ्वी क्षत्रियों से कभी विहीन ही नहीं हुई। परशुराम केसमय में भी अयोध्या तथा उत्तर भारत में जनक, दशरथ, कौशिक, केकय आदि अनेक राजाओं के राज्य थे। वास्तव में परशुराम अर्थात् ब्राह्मणों का यह संघर्ष दक्षिण के यदुवंशी राजाओं से हुआ था जो दक्षिण भारत पर राज्य करते थे। इस युद्ध में शक्तिशाली राजा सहस्त्रवाहु अर्जुन मारा गया था जो ययाति के बड़े पुत्र यदु से 14वीं पीढ़ी में था यह वर्णन विष्णु पुराण के अध्याय XI पर हैं। परशुराम का युद्ध उत्तरी भारत के राजाओं के साथ कभी नहीं हुआ। पुराणों की कथानुसार सम्पूर्ण क्षत्रियों को परास्त करने वाले परशुराम को अपराजित नागवंशियों से सन्धि करनी पड़ी थी और ब्राह्मणों को आज्ञा दी गई थी कि तुम सब नागों का आदर करों। यह नागवंशी जाट थे। यह तो सभी जानते हैं कि सीता स्वयंवर के समय क्षत्रिय राजकुमार श्री रामचन्द्र जी ने परशुराम का अभिमान भंग कर दिया था। हजारों राजकुमारियों का अपने कुलघातकों से सन्तान उत्पत्ति की इच्छा से वीर्य दान लेने का उन पर लाँछन नहीं लगाया जा सकता। वास्तव में क्षत्राणियाँ अपने पतियों के साथ युद्ध में लड़ी है, उनके पति मरने पर सती हुई हैं। पुराणों में तो ब्राह्मणों का बड़ा मान व आदर था। जनता और क्षत्रिय, राजा महाराज उनके चरणों में माथा टेकते थे और उनको राजदरबार में रखा जाता था। राजनीति की बागडोर ब्राह्मण वेदमार्ग पर चलकर अपने धर्म पर अडिग थे। कैप्टेन दलीपसिंह अहलावत इतिहासकार पुराणों की इस कथा को मनगढ़न्त और बेबुनियाद बताते हैं। यह कथा क्षत्रियों पर रौब डालने के उद्देश्य से गढ़ी है। सिद्धान्त तो यह है कि ब्राह्मणों के वीर्य से पैदा होने वाली सन्तान ब्राह्मण कहलाती। अत: यह धारण पूर्णत: असत्य है।

कुछ लेखक 'जाट' शब्द की उत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार मानते हैं - ''महाभारत युद्ध के पश्चात् राजसूय यज्ञ के समय पर भारत के सभी राजाओं ने महाराज युधिष्ठर को ज्येष्ठ की पदवी दी थी। उन्हीं के वंश के लोग आगे चलकर 'ज्येष्ठ' से जाट कहलाने लगे।'' कुछ किवदन्तियां ऐसी भी है कि - ज्येष्ठ की पदवीं महाभारत के पहले श्री कृष्णा जी को मिली थी।

यह वही दिन था जिस दिन कृष्ण जी ने शिशुपाल का वध किया था। कहा जाता है कि इसी दिन से भगवान श्री कृष्ण ने भविष्य में शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की थी और इसी प्रतिज्ञा के कारण उन्होंने महाभारत में शस्त्र धारण नहीं किया था। बहुत समय बीतने पर कृष्ण जी के साथी और वंशज यादव लोग दो दलों में विभक्त हो गए। एक वे जो अपने लिए 'यादव' ही कहते रहे और दूसरे वे जो ज्येष्ठ के अपभ्रंश से जाट कहलाने लगे। ठाकुर देशराज लिखते है कि यह सत्य है कि जाटों में युधिष्ठर बंशी और कृष्णवंशी दोनों ही तरह के लोग शामिल है।

पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिर से 'रिसाला जिहाद' में जाट शब्द के यदु अपभ्रंश, जादू, जाद, जात और जाट बतलाया है। कर्नल टॉड ने भी इस बात को माना है कि जाट यादव है। मि० नेशफील्ड जो भारतीय जातीय-शास्त्र के एक अद्वितीय ज्ञाता माने जाते हैं, लिखते हैं :- ''जाट, यदु या जदु के वर्तमान हिन्दी उच्चारण के सिवाय कोई दूसरा शब्द नहीं है। यह वही जाति है जिसमें श्री कृष्ण पैदा हुए थे।''

"(The word Jat is nothing more than the modern Hindi pronounciation of yadu or Jadu, The tribe in which krishan was born.)" यदु और ज्येष्ठ से जाट शब्द बन गया, भाषा शास्त्र के अनुसार इसमें कोई एतरात नहीं हो सकता और यह कल्पना तथा धारणा बहुत अंश तक ठीक भी है।

युधिष्ठर और कृष्ण दोनों ही चन्द्रवन्शी राजा है। किन्तु जाटों में कुछ कुल अथवा गोत्र सूर्य वंश के भी पाये जाते हैं। यह प्रमाणित बात है कि कोई भी जाति या राजवंश या तो राजनैतिक कारणों से एक दूसरे में मिलते हैं या धार्मिक कारणों से। एक तीसरा कारण आकस्मिक क्रान्तियों का भी है। जाट इतिहास' में ठाकुर देशराज लिखते है कि सूर्यवंशी और चन्द्रवन्शी दोनों प्रकार के राज्य वंशों का जाट से प्रसिद्ध हो जाने का जो इतिहास है वही जाट शब्द की व्युत्पत्ति का भी है।

समानवाची देशी विदेशी नामों ने भी यूरोप के कई इतिहासकारों को खुद धोखे में डाला है। यूरोप के गाथ, गेटि, जेटी, चीन के युती, यूती ऐसे नाम हैं जो जाट शब्द से मिलते हैं। और इस शब्द समानता के मिलते ही उन्होंने जाटों को इन्ही जातियों के वंशज अथवा विदेशों से आकर भारत में बस गये, लिख डाला ये लेखक हैराडोटस, स्ट्रैयो, कनिंघम आदि है।

जाटों को कुछ लोग आक्सस के किनारे से, कुछ सिरदरिया से, कुछ वैक्ट्रिया से और कुछ स्कैण्डनेविया से आया हुआ बताते हैं। मेजर विंगले ''हैण्डबुक आफ जाट्स गूजरस एण्ड अहीरस'' में लिखते हैं कि ''ईसा की पहली शताब्दी में जाट लोग आक्सस के किनारे से चल कर दक्षिणी अफगानिस्तान होकर के भारत आये''। इस कथन का खण्डन मि० नेशफील्ड, सर-हर्वर्ट रिजले, डाक्टर ट्रम्प, बीम्स और अनेक अरब इतिहासकारों ने किया है। देशी इतिहासकारों में श्री चिन्तामणि वैद्य ने तो बड़े मजबूत प्रमाणों के साथ उक्त विचारों का खण्डन किया है। वे लिखते हैं कि न किसी विदेशी इतिहास में ऐसा वर्णन है कि जाट अमुक देश से भारत में गये और न जाटों की दन्तकथाओं में। पं. विद्यावाचस्पति ''मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण'' नामक इतिहास, पुस्तक में यही बात लिखते कि है कि - ''जब से जाटों का

वर्णन मिलता है वे भारतीय ही है और यदि भारत के बाहर कहीं भी उनके निशान मिलते है तो ये भी भारत से ही गए हुए है''। कर्नल टॉड ने स्कन्धनाम में जाटों की बस्तियों का वर्णन किया है। किन्तु जिस समय स्कन्धनाभ में उनके प्रवेश का वर्णन आता है, उससे कई शताब्दी पहले जाटों का भारत में अस्तित्व पाया जाता है। जाट भारत से बाहर गये थे। कई सौ वर्ष पहले गये और कई वर्ष पीछे तक जाते रहे।

विदेशी लेखकों को जानकारी देते हुए ठाकुर देशराज एवं कैप्टेन दलीपसिंह अहलावत लिखते हैं कि विदेशी लेखकों को ज्ञान होना चाहिए कि गेटि, जेति, श्युचि, गात आदि समूह जिनके यूरोप व चीन में निशान पाये गये हैं वे उन जाटों के वंशज है जो कि परिस्थितियों के कारण भारत से बाहर गये थे और वहां जाकर उन्होंने उपनिवेश स्थापित किये।

जाटों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक मनोरंजक कथा और भी कही जाती है। महादेव जी के श्वसुर दक्ष, जो कनखल (हरिद्वार के निकट) के राजा थे, ने यज्ञ रचा और प्राय: सभी देवताओं, ऋषियों एवं राजाओं को तो यज्ञ में आमंत्रित किया लेकिन महादेव जी को व अपनी पुत्री सती जी को निमंत्रित नहीं किया। उस समय शिव जी महाराज ऋषिकेश से 2-3 मील नीचे गंगा के किनारे योग अभ्यास कर रहे थे, और सती जी उनके साथ थी। पिता का यज्ञ समझकर सती जी बिना बुलाये ही पहुँच गई। किन्तु वहाँ उन्होंने देखा कि यज्ञ में न तो उनके पति का भाग ही निकाला गया है और न ही उनका सत्कार किया गया है, यह दुख: मानकर सती जी यज्ञ अग्नि में कूद गई और वहीं पर जलकर मर गई। महादेव जी को जब यह समाचार मिला तो क्रोध में आकर उन्होंने अपनी एक जटाको उखाड़कर पर्वत पर दे मारा जिसके दो टुकड़े हो गये। एक टुकड़े में से वीरभ्रद नामक योद्धा और दूसरे में से सेना उत्पन्न हुई। महादेव जी ने वीरभ्रद को दक्ष और उसके साथियों का दण्ड देने का आदेश दिया। वीरभ्रद अपने गणों के साथ कनखल पहुँचा और राजा दक्ष का सिर काट दिया और उसके साथियों को भी कठोर दण्ड दिया। शिव की जटा से उत्पन्न होने से जाट कहलाये (यह कथा शिव पुराण अध्याय 25 में हैं) आज भी दक्ष प्रजापति का मंदिर कनखल में है जिसकी दीवारों पर इस घटना में मरे व कटे अंगों के मनुष्यों के चित्र है। मन्दिर के पुजारी यात्रियों को यह घटना बताया करते हैं।

यह कथा किबदन्ती के रूप में ही नहीं रही है बल्कि संस्कृत श्लोकों में इसकी पूरी रचना की गई है जो 'देव सहिंता' के नाम से है। उस पुस्तक में लिखा है कि विष्णु ने आकर के शिवजी को प्रशन्न करके उनके वरदान से दक्ष को जीवित किया और दक्ष शिवजी में समझौता कराने के बाद शिवजी से प्रार्थना की कि महाराज आप अपने मतानुयायी 'जाटों' का यज्ञोपवीत संस्कार क्यों नहीं करा लेते ?ताकि हमारे भक्त वैष्णव और आपके भक्तों में कोई झगड़ा न रहे। लेकिन शिवजी ने विष्णु की इस प्रार्थना पर यह उत्तर दिया कि मेरे अनुयायी ही प्रधान है।

देवसंहिता के कुछ श्लोक निम्न प्रकार है :-

पार्वत्युवाच

भगवन् सर्व भूतेश! सर्व धर्म विदावर।

कृपया कथ्यतां नाथ जटानां जन्म कर्मजम्।।

पार्वती ने कहा-हे भगवान ! हे भूतेश ! हे सर्वधर्म विशारदों में श्रेष्ठ! हे स्वामिन! आप कृपा करके मुझे जट जाति का जन्म एवं कर्म कथन कीजिए।।2।।

कर व माता पिता ह्योषां का जातिवंद किं कुलम्।

कस्मिन् काले शुभे जाता प्रश्ननेतान् वद प्रभो।। 13।।

हे शंकर जी! इनकी माता कौन है, पिता कौन है, जाति कौन है, किस काल में इनका जन्म हुआ है?

श्री महादेव उवाच

श्रृणु देवि जगद्वन्द्ये सत्यं सत्यं वदामि ते।

जट्टानां जन्मकर्माणि यन्न पूर्व प्रकाशितम्।। 14।।

श्री महादेव जी ने पार्वती जी से कहा कि हे जग जननी भगवती! जाट जाति के जन्म कर्म के विषय में उस सत्यता का वर्णन करता हूँ जो अभी तक किसी ने प्रकाशित नहीं की।

महावला महावीर्या महासत्त्वपराक्रमाः।

सर्वाग्रे क्षत्रिया जट्टा देवकल्पा दृढ़व्रताः।। 15।।

शिवजी बोले कि जट्ट महाबली, अत्यन्त वीर्यवान और प्रचण्ड पराक्रमी है। सम्पूर्ण क्षत्रियों में यही जाति सर्व प्रथम पृथ्वी पर शासक हुई। ये देवताओं के समान दृढ़ प्रतिज्ञा वाले हैं।

सृष्टेरादौ महामाये वीरभद्रस्य शक्तितः।

कन्यानाँ दक्षस्य गर्भे जाता जट्टा महेश्वरी।। 16।।

सृष्टि के आदि में वीरभद्र की योगमाया के प्रभाव से दक्ष की कन्याओं से जाटों की उत्पत्ति हुई।

गर्वखर्वोऽत्र विप्राणां देवानां च महेश्वरी।

विचित्रं विस्मयं सत्य पौराणिकैः संगोपितम्।। 17।।

शंकर जी बोले हे देवि! जट्ट जाति का इतिहास अत्यन्त विचित्र एव आश्चर्यमय है। इनके इस शानदार इतिहास से ब्राह्मणों और देवताओं के मिथ्याभिमान का विनाश होता है, इसी लिए इस जाति के इतिहास को पौराणिकों ने अभी तक छिपाया हुआ था।

ऊपर लिखित कथा के अनुसार जटा से वीरभद्र व सेना (गण) उत्पन्न होना असम्भव सा जान पड़ता है अतः सच्चाई नहीं है। यह अवैज्ञानिक एवं काल्पनिक है।

जाटों की उत्पत्ति का एक सिद्धान्त 'जरित्का' का सिद्धान्त माना गया है। इसके अनुसार, महाभारत के कर्ण पर्व में, शल्य को उपालम्भ देते हुए कर्ण से कहलाया गया है कि तेरे देश की स्त्रियाँ खड़े होकर मूत्रत्याग करती हैं ?ऊँट की तरह चीख कर गाती हैं, लहसुन के साथ गौ-माँस खाती हैं, साँकल नगरी का एक जटित्का गौ-माँस खाता है, अनेक स्त्रियों का भोग

करता है। कर्ण द्वारा प्रयुक्त 'जटित्का' शब्द को जाटों का पर्यायवाची माना गया। पूना के चिन्तामणि विनायक वैद्य ने जाटों की इस उत्पत्ति को स्वीकार कर लिया, हालांकि सुख सम्पतराय भण्डारी, भाई परमानन्द, डा. जदुनाथ सरकार तथा डा. कालिकारंजन कानूनगो इससे सहमत नहीं हैं। कर्ण का कथन है कि यह कथा, दुर्योधन के दरबार में एक ब्राह्मण ने सुनाई थी, जो शल्य के देश की यात्रा करके लौटा था। यह स्थान विपास (व्यास) नदी के पास है और इसके निवासियों को 'मद्रक' या 'वाहिका' कहा गया है। कालिकारंजन कानूनगो ग्रियर्सन के आधार पर इन मद्रक या वाहिकों का सम्बन्ध, कश्मीरी तथा दरद बोली बोलने वाले हिन्दूकुश पर्वत के आस पास रहने वाली जातियों के साथ मानते हैं, जाटों के साथ नहीं।

जटित्का को जाट मानना और उस पर उपर्युक्त अभद्र आदतों का आरोपण करना, उसी शरारती मस्तिष्क का षड्यन्त्र है जो अपने विरोधियों को मलेच्छ, असुर, राक्षस, चाण्डाल आदि कहता आया है।

900 वर्ष ईसापूर्व पाणिनी ने अपने व्याकरण की रचना की थी। इसमें एक धातु 'जट्' भी है। पाणिनी ने इसका अर्थ 'संघ' बताया है। जाट जाति सदैव संघ बना कर रहती रही है। इसके इस स्वभाव को देखकर जाट शब्द को 'जट' धातु से उत्पन्न मान लिया गया। पंजाब में जाट को आज भी 'जट्ट' या 'जट्टा' कहा जाता है। 'पगड़ी सम्भाल जट्टा' पंजाब का प्रख्यात लोकगीत है। पंजाब के लोग भी संगबद्ध रहते आए है।। मथुरा में भी अर्धक तथा वृष्णि यादवों का एक संघ था। अलबरूनी ने, इसी तथ्य कोनजर में रखकर श्री कृष्ण को जाट कहा है। इसी आधार पर अनेक जाट स्वयं को कृष्ण के वंशज मानने लगे हैं। जाटों की उत्पत्ति का यह भी एक सिद्धांत है जिसे माना जाता है।

डा. नत्थनसिंह के अनुसार जाटों की उत्पत्ति संबंधी एक सिद्धांत 'जात' या 'सुजात' शब्द से उनकी उत्पत्ति का है। भाई परमानन्द इस सिद्धांत के प्रतिपादक है। इसके अनुसार जाट हैहय वंशी क्षत्रियों की उन शाखाओं की सन्तान है जो कभी 'जात' अथवा 'सुजात' के नाम से प्रसिद्ध थी। आपकी मान्यता है कि 'जाट' तथा 'यदु' शब्द में पर्याप्त ध्वनि साम्य है। यदुओं के एक हैहय कबीले की एक शाखा का नाम जात या सुजात था। जाटों का सम्बन्ध इन्हीं जात या सुजात क्षत्रियों के साथ था। इस सिद्धान्त की अनुपयुक्तता इस बात से सिद्ध होती है कि शब्दों में ध्वनि-साम्य से जातियों की उत्पत्ति निर्धारित नहीं होती। दूसरे हैहय क्षत्रिय एकतंत्रीय शासन के समर्थक थे और जाट लोकतंत्र के समर्थक, तीसरे जाटों के गोत्र तथा कुलों के नाम हैहय वंशी क्षत्रियों से मिलते जुलते नहीं हैं, चौथे हैहयों की आदि भूमि दक्षिण थी, वहाँ जाटों का नामोनिशां तक न था। पाँचवे परशुराम से पराजित होने के बाद हैहय लोगों को अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास करते नहीं पाते। परशुराम-हैहय युद्ध रामायण काल पूर्व का है और रामायण तथा महाभारत के बीच कासमय दस हजार वर्ष माना गया है। इस लम्बे युग में, सत्ता के लिए संघर्ष करते उनको नहीं देखा जाता जबकि जाट अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हमेशा युद्ध करता रहा है। निष्कर्ष यह है कि जाटों की जात या सुजात उत्पत्ति वाला सिद्धान्त सारहीन है।

जाटों की उत्पत्ति विषयक 'यात' सिद्धान्त भी है। श्री रामलाल हाला ने इस मत का प्रतिपादन किया है। उनकी मान्यता है कि चन्द्रवंश में कृष्ण से पहले 'यात' नामक एक राजा हुए हैं। जाट उनकी सन्तान है। उनका कथन है कि यात से याट और याट से जाट शब्द बना है। यह सिद्धान्त भी जात या सुजात विषयक सिद्धान्त के समान भ्रामक है। दूसरे यदि जाट राजा का अस्तित्व रहा होता तो उसके वंशजों काउल्लेख महाभारत में कहीं तो अवश्य हुआ होता।

जाटों की उत्पत्ति विषयक इन सिद्धांतों का अस्तित्व मिलता है। इनसे केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि जाट आर्यों का ही स्वतन्त्र तथा प्रगतिशील विचारधारा वाला एक ऐसा वर्ग था, जो न धर्म की सत्ता अर्थात् पुरोहितों की धार्मिक रूढ़ियों का आँख बन्द करके पालन करता था और न राजसत्ता के सामने घुटने टेकता था, स्वतन्त्रता उसके स्वभाव का विशेष गुण था।

एक अन्य रोचक कथा राजपूत और गुर्जर जातियों के मिश्रण से जाटों की उत्पत्ति स्वीकार करती है। कथानुसार-एक गुर्जर सुन्दरी के सौन्दर्य तथा शक्ति से प्रभावित होकर एक राजपूत राजा ने इससे विवाह कर लिया। इन्हीं की सन्तान जाट कहलाई। यह काल्पनिक व मनगढ़न्त कथा इस सीमा तक महत्वपूर्ण है कि इस कथा द्वारा राजपूतों तथा जाटों के सम्बन्धों की स्थापना होती है। यह तय है कि इसमें सत्यता का अंश नहीं है।

शारीरिक बनावट, भाषा, चरित्र, भावनाओं, शासन से सम्बन्ध अवधारणाओं तथा सामाजिक संस्थाओं में जाट प्राचीन वैदिक आर्यो का हिन्दुओं की तीनों उच्च जातियों की अपेक्षा, जिनका मूल चरित्र शताब्दियों के दौरान हुए विकास की प्रक्रिया में निश्चयपूर्वक लुप्त हो चुका है, कहीं अधिक श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। परन्तु जाट के जनजातीय स्वरूप से यह संकेत मिलता है कि वह विदेशी कम सम्मानित यानि इण्डों-सिथियन उत्पत्ति का आत्मज है। भारत के पुरातत्व एवं मानव विज्ञान के अध्येताओं ने इस मान्यता के साथ अपना मत प्रतिपादित किया है कि जाटों और राजपूतों जैसे उत्कृष्ट उद्यमी और सैनिक गुणों के सम्पन्न लोग उत्तर-पश्चिम से भारत में आये होंगे और उन्होंने यहाँ आकर यहाँ के वैदिक आर्यो के अशक्त उत्तराधिकारियों को पूर्व और दक्षिण की ओर भगा दिया होगा, क्योंकि सिकन्दर से लेकर अहमदशाह दुर्रानी तक के ज्ञात एतिहासिक काल में विदेशी अप्रवासियों से निरपवाद रूप से अपना शासन यहाँ के मूल निवासियों के ऊपर आरोपित किया है। इसके अतिरिक्त यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि पार्थियन जातियों की गृहभूमि मध्य-एशिया के शक, यूची, कुशान और हूण जैसे अनेक विदेशी झुण्डों ने 100 ई० पू० से लेकर 600 ई० तक के काल में भारत में प्रवेश किया, कालान्तर में वे सभी भारत के समाज में विलीन हो गये। यदि ऐसा है, तो प्रश्न है कि इन जातियों के आधुनिक प्रतिनिधि कहाँ है ?जाटों और राजपूतों की जंगजू आदतों, परम्परागत रिवाजों तथा उत्पत्ति के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न करने वाली परम्पराओं ने अध्येयताओं की विदग्धता को आकर्षित किया है और उन्होंने एकदम उनकी शकों और हूणों से पहचान स्थापित कर दी। कर्नल टॉड ने इस सम्बन्ध में एक काल्पनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन कियाजिसमें यह कहा गया कि भारत के जाटों, रोमन

साम्राज्य के गोथों तथा जटलैण्ड के जटों के बीच रक्त सम्बन्ध पाये जाते हैं। इस सिद्धान्त ने विद्वानों की अनेक पीढ़ियों को व्यापक रूप से प्रभावित कियाहै। डा० ट्रम्प (Dr. Trumpp) और बीम्स (Beames) के शक्तिशाली शब्दों में इन दोनों जातियों को उनके शरीर की बनावट और भाषा के आधार पर शुद्ध आर्य घोषित किया। यह कहा गया कि उनकी भाषा शुद्ध हिन्दी की ही एक बोली है जिसमें सिथियन भाषा की लेशमात्र भी झलक नहीं है परन्तु उन्हें विकासोन्मुख विज्ञान ने खामोश कर दिया, उसने कहा भाषा जाति का प्रमाण नहीं है।

इसके उपरान्त मानवशास्त्री अपने वैज्ञानिक उपकरणों के साथ प्रस्तुत हुए, उन्होंने भारत के विभिन्न लोगों की खोपड़ियाँ और नाके नापनी शुरू की ताकि उनकी खोई हुई वंशावली को फिर से प्राप्त किया जा सके। इस खोज के फलस्वरूप सर हर्बट रिसले ने भारत के लोगों के सात वर्गीकरण किये और उन्होंने जाटों और राजपूतों को वैदिक आर्यो का वास्तविक उत्तराधिकारी बताया। सभी प्रमुख विद्वानों के अनुसार जाट शुद्ध आर्य की शारीरिक बनावट और भाषा की संयुक्त कसौटी पर खरा उतरा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जाटों की उत्पत्ति कहां से हुई, इस सम्बन्ध में विद्वानों ने खूब मानसिक कसरत की है लेकिन किसी निश्चयपूर्वक स्थिति में नहीं पहुँच सके। हम केवल इतना जानते हैं कि कोई ऐसा वैज्ञानिक तर्क नहीं है – भाषा वैज्ञानिक अथवा नृजाति वैज्ञानिक, जिसके आधार पर जाट के इस दावे को अस्वीकार किया जा सके कि उसकी उत्पत्ति इण्डोआर्यन मूलवंश से हुई है और वह न तो सिथियन है और न ब्राह्मण और क्षत्रिय विधवा (जाठर) की वर्ण शंकर औलाद है। वह मध्य एशिया अथवा काल्पनिक जाठर पर्वत से आया हुआ विदेशी आक्रमणकारी भी नहीं है। बल्कि वह भारत की धरती का वास्तविक बेटा है जिसके पूर्वज पंजाब और सिन्धु पार के क्षेत्रों में बसने के पूर्व मालवा और राजपूताना में निवास करते थे। जाटों को ठोस तथ्यों के अभाव में यह समझाना बहुत ही मुश्किल है कि वे प्राचीन यादवों के वंशज नहीं है।

प्रो. डा. कालिका रंजन कानूनगो के अनुसार 'ऐतिहासिक काल से जाट विरादरी हिन्दू समाज के अत्याचारों से भागकर निकलने वाले लोगों को शरण देती आई है, उसने दलितों और अछूतों को ऊपर उठाया है, उनको समाज में सम्मानित स्थान प्रदान कराया है तथा शारीरिक बनावट और भावनाओं में उन्हें एक रूप आर्य संरचना दी है। यदि जाट की उत्पत्ति का सही तरीके से पता लगाना है तो हमें मुख्य धारा में ऊपर की ओर चलना है, न कि सहायक धाराओं में। यह कहना कि जाटों को उत्पत्ति बाहर के लोगों से है, क्योंकि उनमें कुछ विदेशी कबीलों का विलय हुआ है, उसी प्रकार मूर्खतापूर्ण है जितना कि यह कहना कि गंगा हिमालय से अवतरित न होकर विंध्याचल से अवतरित हुई है, क्योंकि सोन नदी विन्ध्याचल से कुछ पानी उसमें लाकर मिलाती है।'

पौराणिक कथाओं को आधार मानकर 'जाटों का इतिहास' के लेखक ठाकुर देशराज ने अपना मत व्यक्त किया है। यादव वंशावली को सामान्यता स्वीकार करते हुए भी जाट शब्द

की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ठा. देशराज का मत अन्य विद्वानों से भिन्न है। उनके अनुसार – ''जाट शब्द यादवों के विभिन्न जनतान्त्रिक सम्प्रदायों के अंधक–वृष्णि संघ जिसे जाति कहा जाता था, उसी का अपभ्रंश है। उनका कहना है कि बिहार के ज्ञातु भी जाट थे, जो समय पाकर अधिक संख्या में बसे हुए अपने भाईयों की तरफ पंजाब में आ गये।''

ठाकुर देशराज द्वारा प्रस्तुत महाभारत की सन्दर्भ कथा का सारांश यह है – ''यदुवंश के दो कुलों अंधक और वृष्णियों ने एक राजनैतिक संघ स्थापित किया। उस सब में दो राजनैतिक दल थे जिनमें एक तरफ से श्रीकृष्ण और दूसरी तरफ से उग्रसेन थे। श्रीकृष्ण प्रजातन्त्रवादी विचार के लोगों में थे। उसी समय दुर्योधन, जरासंध, कंस, शिशुपाल आदि साम्राज्यवादी शासक मौजूद थे। मथुरा के आस–पास कंस ने प्रजातंत्रीय गोपराष्ट्र और नवराष्ट्र नामक राज्यों को नष्ट कर दिया। फलतः कंस और श्रीकृष्ण में युद्ध हुआ। कंस को परास्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने यादवों के अनेक प्रजातन्त्रवादी समूहों को श्रृंखलाबद्ध करने के लिए सुदूर द्वारिका में जाकर एक ऐसी शासन प्रणाली की नींव डाली जो प्रजातन्त्रीय भी थी और जिसमें अनेक जातियां सम्मिलित हो सकती थी। श्री कृष्ण द्वारा स्थापित जिस संघ का वर्णन किया गया है, वह ज्ञाति कहलाता था। यह संघ ज्ञाति प्रधान था, व्यक्ति प्रधान नहीं। इसलिए इस संघ में शामिल होते ही इस जाति या वंश के पूर्व नाम की कोई विशेषता नहीं रहती थी। ज्ञाति के स्थापना से एक बात और हुई कि एक ही राजवंश के कुछ लोग साम्राज्यवादी विचार और कुछ प्रजातन्त्रवादी (जातिवादी) दो श्रेणियों में बंट गये। प्रजातन्त्रवादी (जातिवादी) जाति विधान तथा नियम और शासन प्रणाली में विश्वास रखने वाले और देश के लिए कल्याणकारी समझे जाने के कारण आगे चलकर 'ज्ञात' कहलाने लगे। अर्थात् ज्ञातवादी ही, ज्ञात, जात और जाट नाम से प्रसिद्ध हुए।''

निष्कर्ष

उपर्युक्त एतिहासिक मतों तथा उनकी आलोचना–प्रत्यालोचनाओं के प्रकाश में किसी निश्चित मत का प्रतिपादन एक दुष्कर कार्य है, तथापि इनके आधार पर हम शोध से सम्बन्धित कतिपय मूल प्रश्नों के सम्बन्ध में स्वयं एक औचित्य पूर्ण मत तो निर्धारित कर ही सकते हैं।

आर्यो के शारीरिक गठन से जाटों के शारीरिक गठन की समानता भी विद्वानों ने स्वीकार की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाए कि जाटों का शारीरिक गठन किसी अन्य प्राचीन जाति के समान है, जाट कम से कम उतने प्राचीन तो है ही जितनी आर्य जाति।

जाट जाति ने स्वयं के सम्बोधन हेतु जाट शब्द को क्यों चुना?इसका उत्तर डा. अजयकुमार अग्निहोत्री देते हुऐ लिखते हैं – महान एवं शक्तिशाली जातियों के नामकरण उनके कर्म अथवा एतिहासिक विकास आधार पर होना कोई नई बात नहीं है। साम्राज्यवादी शक्तियों

का सम्मिलित प्रतिरोध करने हेतु पंजाब तथा भारत के उत्तरी-पश्चिमी पर्वतीय सीमान्त के विभिन्न गणों ने परस्पर एक शक्तिशाली संघ का निर्माण किया और उसे एक समान नाम 'जाट' प्रदान किया। संभावना यह भी है कि इन संघों ने भगवान शिव को उपास्य देव स्वीकार किया हो। इसी कारण शिवजी की जटाओं से जाटों की उत्पत्ति को जाट लोग ही स्वीकार करते हैं।

जाट की परिभाषा क्या है?

जाट वह है जो कि क्षत्रिय आर्यो तथा उनके राजवंशो के, सम्मिलित से बना संघ है, जो वंशो (गोत्रों) के नाम से प्रसिद्ध है।

आदि सृष्टि या वैदिक काल, रामायण काल, महाभारत काल बौद्ध काल तथा वर्तमान काल में बड़े-बड़े जाटवंश (गोत्र) एवं शाखा गोत्र प्रचलित हुये।

जाट जाति तथा उसके सब गोत्र एक ही रक्त के है?

समय-समय पर बने जाटवंश क्षत्रिय आर्यो के वंशज है। आदिकाल में धार्मिक विद्वान श्रेष्ठ मनुष्यों का नाम आर्य हुआ। आर्यो के चार वर्णो में एक क्षत्रिय वर्ण बना। जो क्षत्रिय आर्य कहे गये। सब के सब जाट वंश (गोत्र) के मनुष्यों की रगों में उन्हीं श्रेष्ठ क्षत्रिय आर्यो का रक्त बह रहा है अत: स्पष्ट है सभी जाट गोत्र एक रक्त के है।

प्रतिष्ठा या सम्मान में कौन सा जाट गोत्र अन्य गोत्रों से बड़ा (ऊँचा) है? इसका उत्तर देते हुए कैप्टन दलीपसिंह अहलावत कहते हैं।

''सम्मान में सब जाट गोत्र बराबर है चाहे वह किसी भी प्रान्त में रहते हो। सभी गोत्रों की आपस में रोटी बेटी लेने देने में कोई अन्तर नहीं है। एक जाट गोत्र का मनुष्य किसी भी दूसरे जाट गोत्र के मनुष्य को यह नहीं कह सकता कि तुम्हारा गोत्र हमारे में घटिया है इस लिए तुम्हारा रिश्ता नहीं ले सकते। यह जाटों में ही महान विशेषता है। हाँ जाट गोत्र संख्या में कम या अधिक अवश्य हैं। जाट आखिर जाट होता है।''

जाट आर्य है

जाट जाति का प्रत्येक युवक अपने लम्बे चौड़े डील डौल, सुन्दर गोरे या गेहुँए चेहरे, घने काले वालों, ऊँची गर्दन, काली आंखे, सुथरी पतली नाक से भली-भांति पहचाना जासकता है। जाट युवक का शरीर गठीला और फुर्तिला होता है। इस प्रकार के लक्षणों को देखकर ही मि० नेसफील्ड ने बलशाली शब्दों में कहा है - "If appearance goes for the any thing Jats Could not but be Aryans" अर्थात् ''रंगरूप यदि कुछ समझे जाने वाली कसौटी है तो जाट आर्यो के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकते।'' वास्तविकता भी यही है कि वैदिक आर्यो के वंशधर जाट अपने पुरूखाओं के प्राचीन लक्षणों से आज भी मिलते जुलते है।

कर्नल जेम्स टॉड का मत है कि जाट इण्डों - सिथियन कुल के है, जो ईसा के एक सदी पूर्व अपने निवास स्थान ऑक्सस घाटी से पंजाब में प्रविष्ट हो गये थे। इसका समर्थन करने वालों में कनघंम इब्बेटसन, विसेन्ट स्मिथ आदि विद्वान है। अन्य विद्वान जैक्सन व कैम्पवेल

इनको कुशाण अथवा यूची जाति से सम्बन्धित मानते हैं। जिसका 'मिलर' ने विरोध किया है और कहा कि आकृति विज्ञान को यदि महत्व दिया जाए तो जाटों की आर्य उत्पत्ति पर कोई अज्ञानी ही सन्देह करेगा। 'टॉड' जाटों को 36 राजकुलों में मानता है।

प्रसिद्ध विद्वान शिवदास गुप्ता का कथन है कि ''जाटों ने तिब्बत, यूनान, अरब, ईरान, तुर्किस्थान, जर्मनी, साईबेरीया, स्कैण्डिनेविया, इंग्लैण्ड, ग्रीक, रोम, स्पेन, व मिश्र आदि में कुशलता दृढ़ता और साहस के साथ राज्य किया था और वहाँ की भूमि को विकासवादी उत्पादन के योग्य बनाया था।''

प्रो० डा० कानूनगो के अनुसार शारीरिक विशेषताओं, भाषा, चरित्र, विचारों, सरकार के आदर्शों और सामाजिक संस्थाओं में वर्तमान काल के जाट असंदिग्ध रूप से हिन्दुओं की तीन उच्च जातियों के किसी सदस्य की अपेक्षा वैदिक आर्यों के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि है। इतिहास में जाट परिश्रमी कृषक और निर्भीक लड़ाकू के रूप में काफी परिचित रहें हैं। जाट मुख्यत: कृषक हैं, यही कारण है कि इस प्रजाति ने सिन्धु पंजाब, राजस्थान और गंगा के पश्चिमी हिस्से में कृषि वर्ग के आधार स्तम्भ का निर्माण किया। मजबूत वर्गीय गठबन्धन तथा शासन के अपने प्रजातांत्रिक विचारों की अटूट परम्परा के साथ ज्येष्ठ भ्राता की विधवा के साथ विवाह का रिवाज और नियोग की मान्यता जाटों की कुछ ऐसी सामाजिक विशेषतायें हैं, जो उन्हें हिन्दुओं की किसी भी उच्च जाति की अपेक्षा वैदिक आर्यों के सच्चे प्रतिनिधि होने के दावे को मान्य ठहराती है। इरबिन के अनुसार 'जाट' अपने गांवों की सरकार में राजपूतों की अपेक्षा अधिक प्रजातांत्रिक लगते हैं। वंशानुगत अधिकार के प्रति उनका लगाव कम है और चुने हुए मुखिया को वे प्राथमिकता देते है, जो आर्यों की रीत के अनुसार है।

शक सिथियन, तुरष्क, कुशाण, हूण, तातार आदि विदेशी विजेता जाति समूह भारत में आकर आबाद हुए और आज उनका भारत में कोई अलग अस्तित्व नहीं है। तब अवश्य ही भारत की जातियों में कुछ जातियाँ ऐसी है जो आर्य-नस्ल से अन्य नस्ल है। इसी आधार को लेकर कुछ देशी विदेशी इतिहासकारों ने जाटों को भी राजपूत, मराठा और गूजरों के प्रसंग में शक, सिथियन और हूण आदि जातियों के उत्तराधिकारी प्रमाणित करने की व्यर्थ चेष्टा की है। ऐसे लोगों में मि० स्मिथ और उनके अनुयायियों का प्रथम स्थान है। स्मिथ का अनुमान है कि ''विजेता हूणों में से जिनके पास राजशक्ति आ गई वे राजपूत और जो कृषि करने लग गए वे जाट और गूजर हैं।''

स्मिथ की यह धारणा निर्मूल तथा बिना सोचे समझे आधारहीन तथा काल्पनिक है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार श्री सी. बी. वैद्य ने ''हिस्ट्री आफ मिडीबल हिन्दू इन्डिया'' में स्मिथ जैसे विचार के व्यक्तियों की डट कर आलोचना की है।

प्रत्येक व्यक्ति जो पंजाब के रहने वालों की पूरी जानकारी रखता है और जिसने जाट, गूजर एवं राजपूतों की मानव तत्व अनुसंधान की तुलना को देख लिया है कि वे स्पष्टत:

सिथियन नहीं बल्कि आर्य है, तो भी अन्वेषकों ने साधारणतया उनकी सिथियन, गेटाई, यूची आदि न जाने क्या क्या होने के सिद्धान्त बना लिए हैं। यह भी निर्णय कर लिया है कि वे ऐतिहासिक काल में भारत में आये हैं और सन् ईस्बी का भी उल्लेख किया है, जब कि इस प्रकार बसने के प्रमाण किंचित भी नहीं है। जाटों का भारत में आने का न तो कोई विदेशी वर्ण ही है और न उनकी अपनी कोई दन्तकथा ही प्रचलित है जिससे उनके भारत आने का समय बताया जा सके, न ही ऐतिहासिक व शिलालेख के प्रमाण हैं। मैं ऐसे सिद्धान्तों को देशी व यूरोपियन अन्वेषकों के दिमाग का केवल भ्रम ही कह सकता हूँ जो कि भारत की हर एक अच्छी, उत्साही एवं बहादुर जाति को विदेशी और सिथियन साबित करते हैं।

भाषा विज्ञान के अनुसार जातियों के पहचानने की जो तरकीब है, उनके अनुसार जाट आर्य है। इसके प्रमाण में मिस्टर सर हेनरी एम.इलियट के.सी.बी. ''डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दी रेसेज आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविशेज ऑफ इण्डिया'' में लिखते हैं कि – बहुत समय हुआ मैंने करांची से पेशावर तक यात्रा करके स्वयं अनुभव किया है कि जाट लोग कुछ विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य जातियों से अधिक अलग नहीं है। भाषा से जो कारण निकाला गया है वह जाटों के शुद्ध आर्य वंश में होने के जोरदार पक्ष में है। यदि वे सिथियन विजेता थे तो उनकी सिथियन भाषा कहाँ चली गई ?और ऐसे कैसे हो सकता है कि वे अब आर्या भाषा को, जो कि हिन्दी की एक शाखा हैं, बोलते हैं तथा शताब्दियों से बोलते चले आ रहे हैं। पेशावर से डेराजाट और सुलेमान पर्वतमाला के पार कच्छ गोन्डवा में यह भाषा हिन्द की या जाट की भाषा के नाम से प्रसिद्ध है।

ऊपर दी हुई पहिचानें ऐसी है, जिन पर देशी विदेशी दोनों प्रकार के इतिहासकार और मानव तत्व अनुसंधानकर्त्ता विश्वास करते हैं। इन पहिचानों के अतिरिक्त धार्मिक भावनाओं और रस्म रिवाजों की भी एक पहचान है जिससे प्रत्येक जाति का पता चल जाता है कि वह किस नस्ल व देश की है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी जाट आर्य नस्ल से है। अत: धार्मिक भावनायें और रस्म तथा रीति रिवाज उन्हें वैदिक आर्यो का सच्चा उत्तराधिकारी सिद्ध करती है। यह निर्विवाद सत्य है कि जाट विशुद्ध आर्य एवं भारतीय पुत्र हैं।

प्रामाणिक इतिहास की कमी ने जाटों को उनके स्थान से गिराने में बहुत सहायता की है। 'मथुरा मेमायर्स' के लेखक मि. ग्राउस ने जाटों को अपना इतिहास न लिखने पर बुरी तरह फटकारा है क्यों कि उनकी कोई इतिहास पुस्तक न पाकर दूसरे लेखकों एवं इतिहासकारों ने जैसा जहाँ कहीं से सुना या किसी ने बताया, वे लिखने को विवश हुए, कुछ ने जानकारी के अभाव में, कुछ ने इरादतन व कुछ ने विद्वेष के कारण इस भोली किन्तु बहादुर कौम के बारे में जो चाहा लिख दिया। जाटों ने आज तक इस बात के विरूद्ध कोई क्या प्रचार कर रहा है या लिख रहा है, ध्यान ही नहीं दिया परन्तु फिर भी निष्पक्ष और मननशील विद्वानों ने यह स्पष्ट स्वीकार कियाकि जाट आर्य है और प्राचीन आर्यो के वास्तविक उत्तराधिकारी है।

'कारनामा राजपूत' के लेखक श्री नजमुल गनी रामपुरी लिखता है – ''जाट जाति के अभ्यास, स्वभाव एवं रीति रिवाज से उनका रहन सहन सिन्ध, नदी के पश्चिम में पाया जाता है और यादवों में से इनका निकास प्रमाणित होता है। इस जाति को कृष्णवंशी होने का गौरव ठीक ही प्राप्त है।'' इसी तरह श्री सुख सम्पतिराम भण्डारी ने अपने ''भारत के देशी राज्य'' नामक महाग्रन्थ में लिखा है – जाट आर्य वंश के हैं और प्राचीन काल में भारत में उनके निवासी होने के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। यह भी पता चलता है कि उस समय जाट अन्य क्षत्रियों की तरह उच्च वंशीय माने जाते थे, लेकिन सामाजिक कार्यो एवं मामलों में अधिक उदार (श्रेष्ठ) होने के कारण (पिछले समय में) ये पौराणिक ब्राह्मणों की आंखों में खटकने लगे और उन्होंने इनका जातीय पद नीचे गिराने की कोशिश की। इसके अतिरिक्त अनेक अरब इतिहासकारों ने इसी बात को कहा है कि जाट भारत के आर्यो में से है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जाटों को विशुद्ध आर्य माना है। तब ही तो आर्यो के ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' एकादस समुल्लास पृष्ठ 227–28 पर उन्होंनें जाट जी और पोपजी की घटना का एक उदाहरण देकर जाटों का सम्मान किया है। दृष्टान्त इस प्रकार है–एक जाट था, नियति के अनुसार उसके पिता जीवन की अन्तिम साँसे गिन रहे थे। तब पोप जी ने कहा कि यजमान! अब तू इसके हाथ से गोदान कराओ। जाट जी ने दस रूपये निकाल, पिता के हाथ में रखकर बोला, पढ़ो संकल्प, पोपजी बोले, वाह भाई वाह! क्या बाप बार–बार मरता है?इस समय तो दूध देने वाली अच्छी गाय का दान करो। तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो, क्या बाप को वैतरणी नदी में डुबा कर दु:ख देना चाहते हो?तुम अच्छे सुपुत्र हुए। जाट जी के अस्वीकार करने पर भी उसके परिवार बालों ने मिलकर हठ से गाय का दान पोपजी को दिला दिया। उसका पिता मर गया और पोपजी बछड़ा सहित 20 सेर दूध देने वाली गाय को अपने घर ले गया। जाट जी ने अपने मृतक पिता जी का शमशान भूमि में दाह संस्कार कराया। जाट जी चौदहवें दिन प्रात: काल पोप जी के घर पहुँचा। उस समय पोपजी गाय दुह बाल्टी भरकर उठने लगा था। पोपजी ने जाट जी को देखकर कहा, आइये, यजमान बैठिये।

जाट जी – तुम भी पुरोहित जी, इधर आओ! उसको दूध की बाल्टी सहित अपने पास बुला लिया।

जाट जी – तुम बड़े झूठे हो! तुमने गाय किस लिए ली थी?

पोप जी – तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिए।

जाट जी – अच्छा, तो तुमने वैतरणी के किनारे गाय क्यों नहीं पहुंचाई?तुम इसे अपने घर बाँधे बैठे हो?जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे?

पोप जी – नहीं, नहीं, वहाँ इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बनकर उसको पार उतार दिया होगा।

जाट जी – वैतरणी नदी यहाँ से कितनी दूर है और किधर को है?

पोप जी – अनुमान से कोई तीस करोड़ कोस दूर है क्योंकि उनचास (49) कोटि योजन पृथ्वी

है। और दक्षिण नैर्ऋत्य (दक्षिण पश्चिम) दिशा में वैतरणी नदी है।

जाट जी – इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी या तार का समाचार गया हो, उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई, अमुक के पिता को पार उतार दिया, दिखलाओ?

पोप जी – हमारे पास गरूण पुराण के लेख के अतिरिक्त डाक व तार आदि दूसरी कोई नहीं

जाट जी – इस गरूण पुराण को तुम्हारे पूर्वजों ने तुम्हारी जीविका के लिए बनाया है। जाट जी दूध की भरी बाल्टी, गाय, बछड़ा लेकर अपने घर को चल दिया।

पोप जी – तुम दान देकर लेते हो। तुम्हारा सत्यानाश हो जायेगा।

जाट जी – चुप रहो, नहीं तो तेरह दिन तक दूध के बिना जितना दुःख हमने पाया है, सब कसर निकाल दूगाँ। तब पोप जी चुप रहे और जाट जी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुँचे।

"अब ऐसे ही जाट जी वैसे सभी पुरूष हो तो पोप लीला संसार में न चलें।" (महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती)

स्पष्ट है कि ऋषि जी ने जाट को जाट जी कहकर उसका सम्मान किया और निसन्देह जाटों को विशुद्ध आर्य माना है। इसकी पुष्टि इस बात से हो जाती है कि भारत की अधिकांश जाट जाति स्वामी जी के सिद्धान्तों को मानकर उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज में मिल गई। जाट अपने को हिन्दू कहलाते हुए भी दिल से आर्य समाजी ही है।

जाट धर्म, भाषा, संस्कृति, सभ्यता, शासन पद्धति के आधार पर पूर्ण रूप से वैदिक धर्मी आर्य है। कप्तान दलीप सिंह अहलावत, अपने "जाट वीरों का इतिहास" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि जाट एक ईश्वर में विश्वास, गुण कर्म स्वभाव के आधार पर छोटा बड़ा समझना, जगत जननी जाति का पूर्ण सम्मान करना, प्रान्तीय भेदभाव से दूर रहना, विद्वानों का सम्मान, युद्ध एवं कृषि के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना–संक्षेप में सम्मान के साथ जीना और सम्मान के साथ मरना जाटों की विशेषताएं हैं, 'जो सब आर्यो' में है। जाट, समाज एवं धर्मसुधार में सबसे आगे रहते आए हैं। इनको समाज में मानव समाज सेवा के गुण के कारण ही इन्हें भिन्न–भिन्न स्थानों पर चौधरी, ठाकुर, पटेल, सरदार, मिर्धा, प्रधान, फौजदार, मलिक आदि नामों से सम्मान के साथ सम्बोधित किया जाता है। ये उपाधियाँ जाटों का क्षत्रिय होना सिद्ध करती है।

आर्य जाति और उसके वंशज जाट, भारत वर्ष के मूलनिवासी हैं। जाट लोग भारत से विदेशों में गए और बस्तियाँ बसाई। जाटों के नाम पर या इनके द्वारा बसाये गये बहुत नगर है जैसे – (क) स्पेन में जाटा (Jata) जाटवा Jatwa (ख) स्वीडन में जाटीनडल Jatendal (ग) परिशिया में जाटिनगन Jatingan (घ) थरीश में जाट देश The land of Jata (ड) डालमीटिया में जटन Jaton (च) जर्मनी में जाटिनगिलन्बस The Jathingilnbs (छ) डेन्मार्क में जटलैण्ड Jatland आदि।

टॉड 1/52 पर जनरल कनिंघम की धारणा है कि बयाना और भरतपुर के हिन्दू जाटों की परम्परा कन्धार को अपना पैतृक स्थान मानती है, जबकि मुसलमान जाट प्रायः गजनी अथवा गढ़ गजनी बतलाते हैं। कप्तान दलीप सिंह अहलावत लिखते है। कि गजनी को जाट

राजा गजसिंह ने बसाया था और वहाँ कन्धार पर प्राचीन समय से जाटों का राज्य रहा। ये प्रदेश प्राचीन भारत के ही अंग थे।

जाटों का निवास व शक्ति शाक द्वीप (सिन्धु प्रान्त) में प्राचीन काल से रहता आया है। महाभारत काल से 5000 वर्ष पहले यहाँ जाट उन्नति के पथ पर थे। यहाँ सीमान्त प्रहरी के रूप में जाटों ने भारत वर्ष की रक्षा करने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों का बड़े साहस के साथ सामना किया। इन्होंने पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत में प्रविष्ट होने वाले हूण, शक और यूनानियों से लोहा लिया।

इस्लाम धर्म की स्थापना के समय शार्क द्वीप (सिन्धु प्रान्त) में जाट जनशक्ति का बाहुल्य था। जाट परिवार यहाँ के शासक जागीरदार, उपजाऊ भूमि के स्वामी और विशुद्ध आर्य वैदिक संस्कृति के रक्षक थे। सीमान्त प्रदेश में यादव संस्कृति का अरब और ईरान के नवोदित शासक तथा नागरिकों से सर्व प्रथम संघर्षात्मक परिचय हुआ और वहाँ के लेखक भारत वर्ष के हिन्दुओं को जाट (जट) नाम से सम्बोधित करने लगे। अरब इतिहासकार अलबुरूनी लिखते हैं – मुस्लिम राष्ट्रों में यह धारणा परम्परागत चलती रही कि जाट यादव संस्कृति के वंशज और युद्ध वीर है। महाभारत काल में सिन्धु नदी के आस-पास जाटों का निवास था।

जाट क्षत्रिय है

पिछले पृष्ठों पर सप्रमाण सिद्ध है कि जाट आर्य वंशज एवं भारत के मूल निवासी है। मैं विभिन्न विद्वानों, इतिहासकारों, ग्रन्थों एवं लेखकों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास करूँगा कि इस बहादुर कौम के साथ किसने और क्यों मक्कारी करके, इनके गौरवशाली इतिहास एवं कार्यो की उपेक्षा करके इन्हें शूद्र, वैश्य, नास्तिक एवं मलेच्छ आदि आदि नाम दिये।

महाभारत काल तक सब वैदिक धर्मी और एक ईश्वरवादी थे। वर्ण व्यवस्था प्रौढ़-अवस्था में पहुँच चुकी थी। ब्राह्मणों ने वर्ण को न बदलने वाला करार दे दिया था। परन्तु तीनों वर्ण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इस बात को मानने को तैयार न थे। धर्मराज युधिष्ठर कहते थे कि वर्ण परिवर्तनशील है, अर्थात् शूद्र में ब्राह्मण के लक्षण दिखाई दें और ब्राह्मण में शूद्र के लक्षण हों तो न वह शूद्र, शूद्र है और न वह ब्राह्मण, ब्राह्मण है।

ब्राह्मण वर्ग प्रयत्नरत था कि अन्य वर्णो में से अब किसी भी स्थिति में ब्राह्मण नहीं बनने चाहिए। यज्ञों का अत्यधिक महत्व था किन्तु यज्ञ राष्ट्र की अपेक्षा व्यक्ति के लाभ के लिए अधिक किये जाते थे।

जाट इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज लिखते है कि महाभारत युद्ध में क्षत्रियों के सर्वनाश के पश्चात् भारत की राष्ट्रीयता समाप्त हो गई, आर्य जाति के मत-मतान्तरों ने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। ऋषियों की सन्तान दुराचारियों और पाखण्डियों के वंशज जान पड़ने लगे। नागरिकता के अधिकार समाप्त हो गये। समाज नितान्त अन्ध विश्वासी और मूढ़ हो गया।

वे लोग आँख बन्द कर पुजारी, पन्डे, जोशी, भरारे और शाकुनि लोगों के दास हो गये। मानसिक स्वतन्त्रता को एकदम खो दिया। यद्यपि राजा थे किन्तु देश में पूर्ण अराजकता थी। ढोंगी लोगों के हाथ में नेतृत्व चला गया था, जो सारे देशवासियों को नचा रहे थे। उस समय गौतम बुद्ध शाक्यों (जाट गोत्र) के प्रजातन्त्र के सभापति शुद्धोधन के यहाँ पैदा हुए।

भगवान बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु नगर में 567 वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। शुद्धोधन की रानी का नाम माया देवी था जिसके गर्भ से यह विश्व प्रसिद्ध बालक हुआ। बुद्ध जन्म से पूर्व जो धर्म भारत में प्रचलित था, उससे लोग ऊब चले थे। वे किसी ऐसे धर्म को चाहते थे जो उनको मानसिक शान्ति तथा आत्मिक आनन्द प्रदान कर सके। ब्राह्मणों ने यज्ञों की दक्षिणा के भार से समाज को त्रस्त कर रखा था। पशु वध की यज्ञ प्रणाली से लोग व्याकुल हो रहे थे। यज्ञ कराते समय इसी देश में गोरखपुर के राजा की प्रिय रानी का समागम घोड़े के साथ इन ब्राह्मण पोपों ने करा दिया, जिससे उस रानी की मृत्यु हो गई। ऐसा होने पर राजा वैरागी हो गया तथा अपने पुत्र को राज्य देकर साधु बनकर इन पोपों की पोल निकालने लगा। 'सत्यार्थ प्रकाश' में वर्णित है कि इसी की शाखा रूप चार्वाक और आभाणक मत भी हुआ था। हिन्दू धर्म के सन्यासी स्वयं इस धर्म के विरूद्ध प्रचार करते थे। ऐसे ही कारणों से बौद्धधर्म बड़े वेग के साथ भारत में फैल गया।

बौद्ध धर्म से मिलता जुलता जैन धर्म भी यौवन धारण कर रहा था। इन दोनों धर्मो में बलिदानों से खुश होने वाले तथा यज्ञ के द्वारा ढेर सारा घी, मिष्ठान खाने वाले एवं ब्राह्मणों को खिलाये जाने से खुश होने वाले, ईश्वर के लिए न कोई स्थान था और न उन धर्म-पुस्तकों के लिए स्थान था जिनसे ब्राह्मण, हिंसामय यज्ञों का समर्थन करते थे। ये दोनों धर्म, ब्राह्मण धर्म के स्थान पर अपनी नवीन शिक्षाओं के प्रभाव से जनता को अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। जैन धर्म के अनुयायी जैन मत को बहुत प्राचीन मानते हैं। वे अपने धर्म की उत्पत्ति ऋषभदेव से मानते हैं। उनको वे पहला तीर्थकर (धार्मिक नेता गुरु) मानते हैं उनके बाद 23 अन्य तीर्थकर हुए। पार्श्वनाथ 23वें और बर्द्धमान 24वें तीर्थकार गिने जाते हैं। भगवान महावीर का जन्म लगभग 540 ई० पूर्व वैशाली के पास ही कुण्ड ग्राम में हुआ। आपके पिता ज्ञातवंश (जाट वंश) के राजा थे। भगवान महावीर जी ने जैनधर्म को बड़ा बल दिया तथा दूर-दूर तक फैलाया।

बौद्ध और जैन धर्म के धार्मिक आन्दोलन ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में हुए। इन दोनों ने ब्राह्मण धर्म में आई अनेक बुराइयों तथा कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। बुद्ध एवं भगवान महावीर के सिद्धान्त बड़े सरल थे। जिनमें सत्य एवं अहिंसा मुख्य थे। भगवान बुद्ध ने वर्ण भेद को उठा दिया था। पर वह पूर्ण सफल नहीं हुए। बौद्ध धर्म क्षत्रियों को ब्राह्मणों से ऊँचा मानता था। एक स्थान पर स्वयं बुद्ध कहते हैं कि बौद्धों का जन्म सदैव ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वंश में हुआ है, परन्तु इस समय क्षत्रिय वंश उच्चतम है। अतः मैं इसी में जन्म लूँगा। एक जगह महात्मा बुद्ध फिर कहते हैं कि चतुर्वर्ण में वंश प्रतिष्ठा की दृष्टि से क्षत्रिय सर्वोच्च है।

जैनियों में पहले, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तीन ही वर्ण थे। जब राजा भरत जैनियों के

धार्मिक कृत्य कराने के लिए चौथा वर्ण ब्राह्मण बना चुके, तो अधीन राजा, उमराव और प्रजाजनों को इकट्ठा कर कहने लगे, कि पुराने ब्राह्मण अक्षर म्लेच्छ है। ये नये ब्राह्मण तुम्हारे पूज्य है तथा जो लोग अक्षर म्लेच्छ देश (जहाँ ब्राह्मण धर्म फैला हुआ है) में रहते हैं, राजाओं को चाहिए कि उन पर सामान्य प्रजा के समान कर लगाये।

जो वेदों के द्वारा अपनी आजीविका करते हैं और अधर्म अक्षरों को सुना सुनाकर लोगों को ठगा करते हैं, वे अक्षर मलेच्छ कहलाते हैं, क्योंकि वे अपने अज्ञान के अक्षरों से उत्पन्न हुए अभिमान को धारण करते हैं। हिंसा में प्रेम मानना, जबरदस्ती दूसरों का धन अपहरण करना और भ्रष्ट होना, यही म्लेच्छों का आचरण है। जैन आदि पुराण कहते हैं कि ये ही आचरण इनमें मौजूद हैं। ठा० देशराज कहते हैं कि राजाओं को उत्तम जैन ब्राह्मणों के सिवाय और किसी की पूजा नहीं करनी चाहिए। पुराने ब्राह्मणों को तुच्छ ब्राह्मण और नीच ब्राह्मण कहा गया। जैन ग्रन्थों में ब्राह्मणों को 'अक्षर म्लेच्छ' लिखा गया है। वास्तव में देखा जाय तो बौद्ध और जैन धर्मक्षत्रियों के धर्म थे, जो कि ब्राह्मण धर्म की गुलामी के प्रतिरोध में पैदा हुए थे।

'विष्णु पुराण' में उल्लेख किया गया है कि पुराने ब्राह्मणों ने भी बौद्ध व जैन धर्म की बहुत आलोचना की और उनको समाप्त करने के लिये हर सम्भव उपाय किये, उनको म्लेच्छ व नीच तक कहा। जिस तरह जैन ब्राह्मणों के दर्शन की मनाही करते थे उसी समय ब्राह्मणों ने भी किया। जैसे – जैनियों का (नंगों का) श्राद्ध का भोजन न करें। इनके पास न बैठे, इनके साथ हँसे बोले नहीं एवं उपवास के दिन नंगे जैनी के दर्शन न करे और न सत्संग करे। ब्राह्मणों ने पुराणों में जैनियों के तीर्थङ्करों को दैत्य, असुर अथवा माया मोह के नाम से वर्णन कियाहै, इसके प्रत्युत्तर में जैन पुराणों ने श्री कृष्ण जी की आलोचना की है। ब्राह्मणों ने पुराणों में लिखा है कि हाथी के पैर से कुचल जाना श्रेष्ठ है किन्तु जैन मन्दिर में प्रवेश करना श्रेष्ठ नहीं। जब पौराणिक ब्राह्मणों का बौद्धमत व जैन मत के साथ धार्मिक विवाद शुरू हुआ तो उस समय जिसको बौद्ध काल कहते हैं, भारतवर्ष में जाटों के बहुत से प्रजातन्त्र राज्य थे। जाट राजाओं ने और जाट जनता ने संघ रूप से बौद्ध धर्म को अपना लिया और अनेक क्षत्रिय राजाओं ने बौद्ध धर्म व जैन धर्म अपनाया। जाट राजाओं ने बौद्ध धर्म को भारत व लगभग पूरे एशिया में फैलाने का योगदान सबसे अधिक दिया। अब ब्राह्मण धर्म में पूरी तरह से गिरावट आ गई। उन्होंने क्षत्रियों के विरूद्ध घोषणा कर दी कि कलियुग में कोई क्षत्रिय ही नहीं है और बड़ी-बड़ी क्षत्रिय योद्धा जातियों की म्लेच्छ, यवन, शूद्र और दैत्य करार देकर उन्होंने आर्य जाति को बलहीन कर दिया। यथा –

शनकैस्तु क्रियालोपादिसा: क्षत्रिय जातय:।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मण दर्शनेन च।। 43।।
पौन्ड्रकाश्चौड्र द्रविड़ा: काम्बौजा यवना: शका:
पारदा: पह्वाश्चीना: किराता दरदा: खशा:।। 44।।
मुखबाहूरूपज्जानां या लोके जातयो बहि:।
म्लेच्छ वाचश्चार्यवाच: सर्वे ते दस्यव: स्मृता:।। 45।। ***(मनु 10)***

(ठा० देशराज अपने इतिहास में लिखते हैं कि मनुस्मृति में ऐसी बातें ब्राह्मणों ने बाद में लिखी है।)

अर्थात् पौन्ड्रक, काम्बोज, यवन, शक, पहुँच, चीना, दरद (ये सभी जाट वंश है तथा उस समय इनके प्रजातन्त्र राज्य थे।) औड्रद्रविड, पारद, किरात एवं खश यह क्षत्रिय जातियां है, किन्तु ब्राह्मणों के दर्शन न करने और क्रिया लोप होने से बृषल (हीन) हो गई और शूद्र, म्लेच्छ कहलाने लगा। इस देश से बाहर रहने के कारण यह ब्राह्मण या क्षत्रिय होते हुए भी चाहे ये आर्य भाषा बोलते थी, चाहे म्लेच्छ भाषा, सब दस्यु कहलाई।

विष्णु पुराण में लिखा है कि – ''यह सब क्षत्रिय धर्म और ब्राह्मणों को त्याग देने से म्लेच्छ बन गये।''

यह बात तो जातियों की है, ब्राह्मणों ने उन देशों को भी पतित करार दे दिया जिनमें उनके सम्प्रदाय के आदमी न थे। ब्राह्मण लोग मगध को म्लेच्छो का देश मानते थे। मगध राज्य की नीवं डालने वाला वसु का पुत्र बृहदश्व था। चन्द्रवंशियों का यह समूह ईरान से आकर यहाँ आबाद हुआ। ईरान में क्षत्रिय की संज्ञा मगध थी। मगध क्षत्रियों के नाम पर ही यह देश मगध कहलाया। यह जाट वंश है।

ब्राह्मणों ने अपने धर्म के सिद्धान्त बताकर लोगों से इनके अनुयायी होने का निवेदन किया। जिन क्षत्रिय एवं दूसरी हिन्दू जातियों ने इस नवीन ब्राह्मण धर्म को मान लिया, उस संघ का नाम ब्राह्मणों ने 'राजपुत्र' रख दिया, क्योंकि राजवंश या राजकुमार इस संघ में अधिक संख्या में थे। राजपुत्र का अर्थ है राजा के बेटे। आगे चलकर कुछ समय बाद (7वीं शताब्दी) इनका नाम 'राजपूत' रख दिया। जाट, अहीर, गूजर भी इस नवीन हिन्दू धर्म में दीक्षित हो गये, परन्तु बहुत कम संख्या में जाटों के अनेक वंश या गोत्र इसमें दीक्षित हुए।

ब्राह्मणों के सिद्धान्त निम्न लिखित प्रकार के थे। कुछ उदाहरण :- (1) विधवा विवाह निषेध (2) पर्दा प्रचलन (3) विधवा को सती कर देना। (4) श्राद्ध और उत्सवों तथा यज्ञों में पशुओं का बलिदान करना और चामुंडदेवी पर बकरा, भैंसा काट कर चढ़ाना। (5) छूआछूत का मानना। (6) खानपान की पाबन्दी – किसी दूसरे के हाथ का बना भोजन न खाना (7) बहुदेवों की पूजा करना (8) देवताओं की मूर्ति को ईश्वर मानकर पूजना (9) वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर होगी और वर्ण बदले नहीं जायेंगे। (10) ब्राह्मणों को ईश्वर के समान मानकर उनका सम्मान करना व इनके आदेशों पर चलना, आदि-आदि।

जाट क्षत्रियों को ये सिद्धान्त बिल्कुल पसन्द नहीं आये क्योंकि वे तो वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले शुद्ध क्षत्रिय आर्य है।

जाटों ने ब्राह्मणों द्वारा घोषित तथाकथित नवीन धर्म स्वीकार नहीं किया। यही कारण था कि ब्राह्मणों और राजपुरोहितों ने जाटों को शूद्र कहा और मौखिक तथा लेखबद्ध इनको क्षत्रिय न मानकर नास्तिक, म्लेच्छ अनार्य और पतित कहा। अहीर गूजरों को भी यही संज्ञा दी।

ब्राह्मण जितना अधिक बुरे से बुरा लिख सकते थे उन्होंने लिखा और इन्हीं का अन्धानुकरण अन्य लेखक बिना अन्वेषण व पूर्ण जानकारी के करते गये। ब्राह्मणों एवं पुरोहितों के सेवक राजपूतों ने भी जाटों के साथ ऐसा व्यवहार किया जो सभ्य समाज के माथे पर कलंक कालिमा लगाता है। राजपूतों के सहारे (सत्ता के साथ) इन पौराणिक ब्राह्मणों, भाटों और चारणों ने जाट, गूजर एवं अहीर को क्षत्रिय न कहने और न मानने के काफी प्रचार और लेख व ग्रन्थ लिख डाले। राजपूतों का व्यवहार भी शर्मनाक तथा लज्जाजनक रहा।

'कमलाकर' ग्रन्थ में जिसमें शूद्र जातियों का वर्णन है, जाटों का नाम नहीं है फिर भी इन विरोधियों ने जाटों को गिराने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

जिस प्रकार तत्कालीन भ्रष्ट तथा संकीर्ण शासन का विरोध करने वालों को इतिहासकारों ने राजमार्गों पर लूटपाट करने वाला कहा है, उसी प्रकार धर्म समाज तथा शासन के नाम पर जनता का शोषण करने वाले तथा पुरोहित के गठबन्धन को चुनौती देने वाले, उनकी धार्मिक मान्यताओं को ठुकरा देने वाले, उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के घेरे से अलग रहने वालों को बिना कमाये, धर्म के नाम पर खाने वालों ने आर्यों की सन्तानों को म्लेच्छ, नास्तिक एवं पतित कह दिया है जो अनुचित एवं निन्दनीय है।

आर्य पुत्र जाट जिन्होंने न राजसत्ता के सामने सिर झुकाया था और न धर्म की सत्ता के सामने। जाट उन आर्यों की सन्तान है, जिन्होंने न धर्म की गुलामी को सहन किया था और न राजतन्त्र की दासता को। बिना परिश्रम किये पोथी पत्रा के बल पर जीविका कमाने वाले पुरोहित और अपने स्वार्थों की सिद्धि तथा सामाजिक व्यवस्था में वर्चस्व बनाये रखने के उद्देश्य से राजा को ईश्वर का अवतार मानने वाले ब्राह्मण के शासन को आर्यों की सन्तान जाटों ने कभी स्वीकार नहीं किया।

ब्राह्मण एवं पुरोहित सत्ता की छाया में धर्म तथा नीति का झूठा जाल बिछाकर अपने विरोधी को समाप्त करते थे। जाट जाति इसका अधिक शिकार हुई। जाटों को समय-समय पर तलवार तथा कलम दोनों द्वारा समाप्त करने की योजना धर्माधिकारी तथा शासक ने बनाई। धार्मिक प्रचारकों ने जाटों को सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित कर देने के लिए कलम चलाई। यथार्थ में जाटों का शासक एवं तलवार ने तो थोड़ा सा ही विनाश किया, पर धर्म प्रचारक, ब्राह्मण, पुराहितों (लेखकों) ने उनकी सामाजिक प्रतिष्ठावंश परम्परा तथा जातीय विकास को बहुत अधिक धूमिल किया।

यह कहना भी असत्य न होगा कि इन धूर्त्तों ने अपने स्वार्थों के लिए एतिहासिक सत्य पर पर्दा डाल दिया और इस प्रकार जाटों के जातीय विकास की प्रक्रिया को धूल धूसरित करने का प्रयास किया। दूसरी जाति के लोग भी प्रभावित हुए किन्तु उन्होंने किसी न किसी स्तर पर शासक तथा पुरोहित से समझौता करके दासता का जीवन जीया, पर जाटों ने इस स्थिति को कभी स्वीकार नहीं किया। वे इनसे भी संघर्ष करते रहे और भारत पर आक्रमणकारी विदेशी

विधर्मियों से भी। उन्होंने संघर्ष तथा साहस के बल पर अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक प्रतिष्ठा बनाई। इस वीर तथा साहसी जाट कौम पर भारत के जन-जन को गर्व करना चाहिए।

नवीन ब्राह्मणों के पूर्व में वर्णित सिद्धांतों के न मानने पर ब्राह्मणों ने जाटों को शूद्र लिख दिया तो प्रो० कानूनगो, अरब यात्री अलवेरूनी, चीनी यात्री हवानत्सांग, कर्नल जेम्स टॉड, कनिघंम, इब्बेटसन, बिसेन्टस्मिथ जैम्सन व कैम्पवेल ने भी भ्रमित होकर जाटो के बारे में तथ्यहीन लिख दिया, जिसका खन्डन अनेकानेक प्रमाण देकर किया जा चुका है। कुछ इतिहासकार जाटों को वैश्य लिखते हैं जो कि अपुष्ट जानकारी का प्रतीक है।

ग्यारहवीं शताब्दीं में भारत में आने वाला अरब यात्री अलवेरूनी ने यहां तक लिख दिया कि "श्री कृष्ण के पिता वसुदेव शूद्र थे और वह जट्टवंश के पशुपालक थे।"

आर्य लोग आदि सृष्टि से ही खेती करते और पशु पालते हैं। ब्राह्मण व ऋषियों के आश्रमों में बहुत सी गायें रहती थी। वेद शास्त्रों में अनेक उदाहरण है कि राजे महाराजे और क्षत्रिय आर्य लोग अपने हाथ से खेती करते थे, पशु-पालते थे। राजा जनक ने अपने हाथ से हल चलाकर खेती की ओर वे हजारों गाये रखते थे। शास्त्रार्थ में जीतने वालों को कई-कई गाये इनाम में दी जाती थी, ऐसे अनेक क्षत्रिय राजाओं के उदाहरण है। क्षत्रिय आर्य शान्ति के समय खेती करते थे और युद्ध के समय शस्त्र उठाकर शत्रु से लोहा लेते थे।

अतः श्री कृष्ण जी के पिता को शूद्र कहने वालों को भारतीय सामाजिक संरचना का ज्ञान ही नहीं है तथा ऐसा लिखना सफेद झूठ और बेबुनियाद है।

जाट प्रचन्ड वीर है

अज्ञान का अन्धकार सदा नहीं रहता, प्रकाश अवश्य होता है, सांच को आंच नहीं, धर्म की सदैव विजय होती है और झूठ को एक दिन पराजित होना पड़ता है। वह समय आ गया है कि जाटों ने जिन बातों को आर्य विधान समझ कर प्राचीन काल से अब तक पालन किया है, और जिनके कारण विरोधी लोगों ने उन्हें धर्म हीन, नास्तिक, शूद्र, म्लेच्छ, वैश्य न जाने क्या-क्या कहा। अब वही विधान विरोधी लोग विधवा विवाह को वैदिक मर्यादा, खेती और पशुपालन को शुभ कर्म, पर्दा बहिस्कार को मानवता, अन्तर्जातीय विवाह को राष्ट्रीयता के पवित्र नामों से पुकारते हैं। प्रभु कृपा से वह समय भी आयेगा जब लोगों का अज्ञान दूर होगा और देश के लोग पौराणिक धर्म पाखण्डो को छोड़कर वैदिक धर्म पर चलने लगेंगे।

आदि सृष्टि से वर्तमान काल तक जाट वंशों की वीरता के विषय में अनेक देशी विदेशी इतिहासकारों ने पुस्तकें व ग्रन्थ लिखे हैं। किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ को उठाकर देख लो उसमें जाटों की शौर्यता एवं पराक्रम के अनेको वर्णन मिलेंगे। जाट बड़े लड़ाकू एवं बहादुर होते हैं। युद्धों में जाटों की हार जीत के अनेक प्रकरण आपको मिल सकते हैं परन्तु यह लेख आपको कहीं भी नहीं मिलेगा कि जाट शत्रु से डर कर भाग गया या डरकर हथियार डाल दिये हो। ये

जाटों की प्रचण्ड बहादुरी का प्रतीक है। मेरे द्वारा इनके शौर्य एवं पराक्रम के सभी प्रमाण लिखना एक असंभव सी बात है, मैं आपको कुछ (बानगी) उदाहरण दूँगा।

''जाटों से पाइर्रस (Pyrrhus) डरा, जुलियस सीजर कांप गया, सिकन्दर महान ने घोषणा की थी कि जाटों से बचो और सम्राट जेरौम (Jerome of spain) ने कहा था कि जाटों के आगे सींग है सो इनसे दूर रहो।'' ये शब्द जाटों की शौर्यता और बहादुरी को देखकर 10वीं शताब्दी में स्पेन के अन्तिम जाट सम्राट अलवीरी ने कहे थे।

कर्नल टॉड लिखते हैं कि जिन जाट वीरों के प्रचण्ड पराक्रम से एक समय सारा संसार काँप गया था, आज उनके वंशज राजपूताना (राजस्थान) और पंजाब में खेती करके गुजारा करते हैं। 'हेरोडेटस' ने तो एक स्थान पर यहाँ तक कहा कि ''जब भी जाटों में एकता हुई तब संसार की कोई भी जाति बहादुरी और पराक्रम में इनका मुकाबला नहीं कर सकती''

According to the Greek historian, Herodotus and others, there was on nation in the world equal to Jats in bravery provided they had unity.

''एन्टीक्यूटी आफ जाट रेस'' लेखक उजागरसिंह माहिल लिखते हैं कि संसार विजेता सिकन्दर महान को (सोगदियाना) युद्ध में जाटों ने करारी हार दी जिसके कारण वह बीमार भी पड़ गया था। सिकन्दर की केवल यही एक बार हार हुई थी।

कर्नल जेम्स टॉड के शब्दों में - आज के जाटों को देखकर अनायास ही यह विश्वास नहीं होता कि ये जाट उन्हीं प्रचण्ड वीरों के वंशज है जिन्होंने एक दिन आधे एशिया और यूरोप को हिला दिया था।

23 नवम्बर 1967 को बरेली में जाट रेजीमेन्ट को ध्वज प्रदान करते समय भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसैन ने अपने भाषण में कहा था- ''जाटों का इतिहास भारत का इतिहास है और इसी तरह जाट रेजीमेन्ट का इतिहस भारतीय सेना का इतिहास है। सदियों से ये अपने स्वतन्त्रता प्रेम के लिए मशहूर है। इनकी आजादी-पसन्दी और आजादी के लिए मर मिटने की मिसालों से इतिहास भरा पड़ा है। पश्चिम में फ्रान्स से लेकर पूर्व में चीन तक 'जाट बलवान, जय भगवान' का रणघोष गूंजता रहा है।''

इसी प्रकार पं० मदनमोहन मालवीय ने पुष्कार में भाषण देते हुये कहा था कि जाट भारतीय राष्ट्र की रीढ़ है। भारत माँ को इस साहसी वीर जाति से बहुत बड़ी आशायें हैं। भारत का सुखद भविष्य जाट जाति पर निर्भर है। दुर्दान्त आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली ने जाटों की साहसिकता और शौर्य को स्वीकार करते हुए कहा था कि मैंने भारत पर जितनी बार भी आक्रमण किया, पंजाब के दुर्दान्त जाटों ने हमारी फौज का मुकाबला किया युद्ध में हर बार प्रत्येक अवसर पर वे निडर दिखाई दिये।

कप्तान दलीपसिंह अहलावत कहते हैं कि ''गजनवी जहाज'' पुस्तक में हसन निजामी को विवश होकर लिखना पड़ा - ''राजा विजयराव (जाट) की फौज महमूद की फौज के साथ ऐसी वीरता और साहस से लड़ी कि इस्लामियों के छक्के छूट गये। इस युद्ध में महमूद ने

अपना साहस छोड़कर दरगाह में खुदा के आगे घुटने टेक दिया।''

जाट मिट सकते हैं लेकिन अपने दुश्मन के सामने सिर झुका नहीं सकते। जाटों को मुगलों ने परखा था, पठानों ने उनकी चासनी ली, अंग्रेजों ने उनकी बहादुरी के पैतरे देखे और पराक्रम के करतब देखे। अंग्रेजों ने देहली, काबुल, भरतपुर, पुष्कर, पानीपत और जर्मन तथा फ्रांस की भूमि पर अपने गर्म गर्म लहू की स्याही और कटार कलम से लिख दुनिया के सामने सिद्ध किया कि जाट क्षत्रिय एवं प्रचण्ड वीर है। महमूद गजनवी, लार्ड लेक और तैमूर के दाँत इन्हीं जाटों ने तोड़े थे। जिन्हें सी.वी. वैद्य जैसे इतिहासकारों ने वैश्य कहा है। काबुल के पठानों की नजर में कोई भारतीय क्षत्रिय कौम खटकी थी तो यही जाट थे। नादिर शाह तो जाटों के पराक्रम से हिल गया था। जाट बड़े से बड़े विजेता की दिल दहलाने वाली तारीफ से डरा नहीं बल्कि दुश्मन से सीधा भिड़ गया। ऐसी है पराक्रमी जाट कौम, जिसकी बहादुरी का डंका विश्व में कई बार बज चुका है।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज योद्धा मि.एफ.एस. यांग F.S. Yang इन्सपेक्टर जनरल आफ पुलिस ने झुंझनू में 1931 में एक महोत्सव में अपने भाषण में कहा था–''जाट सच्चे क्षत्रिय हैं, अत्यन्त धीर एवं वीर है, हमने जर्मन युद्ध के समय उनकी वीरता को देख लिया है। वे युद्ध के मैदान में मरना जानते है लेकिन पीछे हटना नहीं। अंग्रेजी सरकार की ओर से उनकी पल्टन को रायल की उपाधि मिली है। मैं यह भी कहता हूँ कि जाट बहादुरी के साथ ही सच्चे ईमानदार और बात के पक्के होते हैं। वे दगा नहीं करते हैं। मैंने स्वयं कुछ जाटों को परखा है, वे सच्चाई, दृढ़ता और वीरता की कसौटी पर खरे उतरे हैं।''

''मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण'' नामक पुस्तक का लेखक लिखता है कि जाटों में आज भी एक अल्हड़पन से युक्त वीरता और भोलेपन से मिश्रिम उद्दण्डता विद्यमान है। उनको प्रेम से वश में लाना जितना सरल है, आँखे दिखलाकर दबाना उतना ही कठिन है। सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से वे अन्य हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक स्वाधीन है और सदा रहे हैं। लड़ना उनका पेशा है। मनमानी करने में और अपनी आन–बान की खातिर अपना घर बिगाड़ देना या जान को खतरे में डाल देना जाटों की विशेषता है।

जाट अपनी तुरंत बुद्धि के लिए भारत की सभी जातियों में श्रेष्ठ माना जाता है। जाट जाति के लिए कहावत है कि ''अनपढ़ जाट पढ़ा–जैसा, पढ़ा जाट खुदा जैसा।''

भरतपुर नरेश महाराजा कृष्णसिंह ने सन् 1925 ई. के जाट महासभा के पुष्कर अधिवेशन में अपने उद्बोधन में कहा था–मुझे इस बात का गर्व है कि मेरा जन्म जाट क्षत्रिय जाति में हुआ है। हमारी जाति की शूरवीरता के चरित्रों से इतिहास रंगा पड़ा है। हमारे पूर्वजों ने कर्तव्य धर्म के नाम पर मरना सीखा था और इसी बात के पीछे अब तक हमारा सिर गर्व से उन्नत है। हमारे पुरखाओं ने जो–जो वचन दिये, प्राणों के जाते–जाते उनका निर्वाह किया था। तवारीख बतलाती है कि हमारे बुजुर्गों ने कौम की भलाई और उन्नति के लिए कैसी–कैसी कुर्बानियां की

है। हमारे शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन संसार करता है। मैं विश्वास करता हूँ कि शीघ्र ही हमारी जाति की यश पताका संसार भर में फहराने लगेगी।

इन अल्प बानगी रूपी उदाहरणों से पाठक एवं वे अज्ञानी व ईर्ष्यालु लेखक जिन्होंने जाटों के लिए शूद्र, म्लेच्छ पतित, नास्तिक और वैश्य आदि कहा है, समझ गये होंगे कि जाट सच्चे क्षत्रिय एवं भारतीय आर्य पुत्र है। इस बहादुर कौम की वीरता के कारनामों से इतिहास, ग्रन्थ एवं पुस्तक भरी पड़ी है, आवश्यकता है उनको सही नजरिये से पढ़ने की। प्राचीन काल से वर्तमान तक जाटों की शौर्यता, दरिया-दिली, देश भक्ति एवं मानव जाति के कल्याण की भावना के हजारों, लाखों उदाहरण हैं जिन पर यह गौरवशाली जाति गर्व करती है।

❑❑❑

जाटों का मूल स्थान एवं प्रसार

जाट एक ऐसी जाति है जो इतनी अधिक व्यापक और संख्या की दृष्टि से इतनी अधिक है कि उसे लगभग एक राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। अब उनकी संख्या कई करोड़ है मेरे अनुमान से लगभग 20 करोड़ जाट इस संसार में निवास करते हैं जिनमें हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई या अन्य धर्मी जाट शामिल है। इनके अतिरिक्त भारतवर्ष की अन्य कई जातियों में जाट गोत्र मिलते हैं। वे लोग इस संख्या में शामिल नहीं हैं।

इस जाति के लोग उत्तर में हिमालय पर्वत की निचली तराई, पश्चिम में सिन्धु नदी का पूर्वी किनारा, दक्षिण में हैदराबाद (सिन्धु आधुनिक पाकिस्तान) कच्छ-काठियाबाड़, अजमेर, जोधपुर बीकानेर, जैसलमेर से भोपाल तक और पूर्व में गंगा नदी का किनारा दोआब, रूहेलखण्ड आदि उपजाऊ भूमि के बीच में आबाद है। सिन्धु नदी के पश्चिम में ये पेशावर, बिलोचिस्तान तथा सुलेमान पहाड़ियों के पार तक फैले हुए हैं। किरमान और ईराक में जाट जिप्सियों की बीस हजार मिश्रित आबादी है। मकराना और अफगानिस्तान में इनकी पचास हजार आवादी का अनुमान लगाया जाता है।

उपेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार-सिन्धु नदी के दोनों ओर आबाद जिले और मुलतान के चारों ओर मिले जुले जाट बिलौचियों में प्राय: सामाजिक संसर्ग और रक्त एकता विद्यमान है। अफगानिस्तान और उसके पश्चिम में ये मुसलमान है। जेहलम से हांसी तक, हिसार, पानीपत तथा दीपालपुर में ये सिक्ख है और इस क्षेत्र में प्राय: इनकी पांच करोड़ आबादी आँकी जाती है। राजस्थान, मध्य भारत, उत्तर प्रदेश और हरियाणा राज्यों में ये कृषि प्रधान हिन्दू है।

आधुनिक पंजाब में सिक्ख जाटों की अत्यधिक संख्या है जबकि वहाँ हिन्दू जाट कम संख्या में है। फिरोजपुर जिले की तहसील फाजिल्का में खूब हिन्दू जाट है। जिला भटिण्डा, संगरूर पटियाला और रूपनगर में भी हिन्दू जाट है परन्तु इनकी संख्या कम है।

कप्तान दलीपसिंह अहलावत के लेखानुसार आधुनिक हरियाणा प्रान्त में दूसरी जातियों की तुलना में हिन्दू जाटों की संख्या अधिक है। रोहतक, सोनीपत, करनाल, जींद, हिसार, सिरसा, भिवानी जिले तो हिन्दू जाटों के गढ़ कहे जाते हैं, जहाँ पर इनकी भारी संख्या है। गुड़गाँव जिले में जाटों से मेव अधिक संख्या में है। महेन्द्रगढ़ जिले की रेबाड़ी तहसील में अहीर अधिक हैं, फिर भी इस जिले में जाटों की संख्या और जातियों से अधिक है। शेष अन्य जिलों फरीदाबाद, अम्बाला, कुरूक्षेत्र में जाट अन्य जातियों की तुलना में अधिक है।

भारत की राजधानी दिल्ली के तीन ओर जाट बसे हुए हैं। राजस्थान में धौलपुर, भरतपुर, अलवर, जयपुर, सीकर, झुन्झुनू, खेतड़ी, लुहारू, बीकानेर की सम्पूर्ण में से आधी जनसंख्या, जोधपुर का उत्तरी भाग पर्वतसर, खादू, पाली से नागौर तक, अजमेर मारवाड़ से

खण्डवा तक, नसीराबाद से भीलवाड़ा तक, चित्तौड़गढ़ के कपासन आदि क्षेत्रों में जाट बहुसंख्या में बसे हैं। मध्य प्रदेश के रतलाम शहर तथा आसपास, इन्दौर के चारों ओर, होशंगावाद की हरदा तहसील तथा नरसिंहपुर से करौली तक, भोपाल में 15 गाँव, ग्वालियर के गोहद क्षेत्र में जाटों की घनी आबादी है। उत्तर प्रदेश के बरेली जिले की बहेड़ी तहसील, बदायूँ की उफानी, रामपुर की विलासपुर तहसील तथा रूद्रबुर से हलद्वानी तक, मुरादाबाद, बिजनौर मेरठ, मुजफ्फर नगर, अलीगढ़, सहारनपुर, बुलन्दशहर, आगरा के चारों ओर तथा मथुरा आदि जिले जाटों से भरे हैं।

अनेक इतिहासकार कहते हैं कि सिन्ध, पंजाब, हरियाणा, देहली, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जाट प्रदेश के नाम से पुकारे जा सकते हैं क्योंकि इन प्रदेशों में जाट मधुमक्खी की तरह है। गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशों में जाटों की संख्या कम है। काठियाबाड़ में जाट है किन्तु कम है। पटेलों और जाटों का आपस में अति घनिष्ट सम्बन्ध है। इस तरह वर्तमान में भी भारत का ऐसा कोई हिस्सा रिक्त नहीं है जहाँ जाट न रहते हों। मध्य प्रदेश में मालवा, निमाड़, खानदेश और बरार में मारवाड़ी व मेवाड़ी जाटों का भी बाहुल्य बढ़ता जा रहा है, जहाँ उन्होंने लघु मारवाड़ ही बसा लिया है। नर्मदा की घाटी में भी ये जाट बसे हुए है। हरदा जिला होशंगाबाद में पंजाब से आए हुए जाट आबाद है।

हिमाचल प्रदेश में भी डोगरा जाट हैं जो अधिकतर सेना में हैं। डोगरा राजपूत भी होते हैं। डोगरा जाट बड़ा वीर एवं मेहनती होता है। आन्ध्र प्रदेश महाराष्ट्र में भी जाट निवास करते हैं। महाराष्ट्र में बौद्ध काल के बाद यहाँ के ब्राह्म 'महाराष्ट्रीय' और क्षत्रिय 'मराठा' नाम से प्रसिद्ध हुए। इन मराठा कहलाने वाले क्षत्रियों के वंश आन्ध्र, यादव, राठ (राठी), चालूक्य, यवन, काम्बोज, भोज, पल्लव, मौर्य आदि है जो सब जाटवंश है। इन्होंने इस राज्य को आबाद किया तथा राज्य किया। कप्तान दलीपसिंह अहलावत ने 'जाट वीरों का इतिहास' नामक ग्रन्थ में मराठाओं को इन क्षत्रिय वंशों की ही संतान सिद्ध किया है। इन मराठाओं के बारे में 'कप्तान अहलावत' ने विस्तार से लिखा है।

केरल में भी जाट है। केरल विधान सभा में चौधरी धारासिंह विधायक थे जो भरतपुर के सुप्रसिद्ध गाँव सोगर के मूल निवासी थे। तमिलनाडू में भी जाट बसते हैं और उनकी जाट सभा है। जिसमें सभी भाई प्रतिमाह बैठक आयोजित करते हैं। श्री मेदाराम वेनीवाल तमिलनाडू के मेरे पत्र मित्र हैं जो वर्षो से मुझे अपने राज्य के जाट भाइयों की गतिविधियाँ लिखते रहते हैं। श्री वैनीवाल अपना निजी व्यवसाय चलाते हैं।

महाराष्ट्र में हरदोई तहसील (मनसाड़ और चालीस गाँव स्टेशन के बीच) में समस्त बस्ती जाटों की है। यहाँ पर निवास कर रहे जाटों का पहनावा हरियाणा एवं ब्रज के जाटों जैसा है। उनकी स्त्रीयाँ दामन (घाघरा) चून्दड़ी, कुर्ता और जेवर पहनती है। जैसा कि उत्तरी भारत में जाट स्त्रीयाँ पहनती है। कहते है सन् 1761 ई० में हुई पानीपत की तीसरी लड़ाई में हारे हुए मराठाओं को भरतपुर राज्य से दक्षिण तक पहुँचाने के लिए उनकी सुरक्षा हेतु भरतपुर राज्य के

जाट उनके साथ गये थे जो वहाँ हरदोई आदि स्थानों में बस गये।

जम्मू-कश्मीर युवा जाट सभा के तत्त्वाधान में 6, 7 फरवरी 1988 को All India yuva Jat workers camp, रनधीरसिंह पुरा जम्मू में आयोजित हुआ था। जिसमें भारतवर्ष के कई प्रान्तों के प्रतिनिधि पहुँचे थे। मैं भी राजस्थान के प्रतिनिधि मण्डल में जम्मू कश्मीर गया था। मैंने वहाँ के जाटों को कई दिन तक करीब से देखा पहिचाना था। हिन्दू जाट, सिक्ख जाट एवं मुसलमान जाटों का ऐसा संगम मैंने पूर्व में कहीं भी नहीं देखा था। जम्मू में करीब 4 लाख जाट आबाद हैं जो सीमा पर भी निवास करके खेती बाड़ी करता है। जम्मू में यातायात के साधनों पर अधिकतर जाटों का ही अधिकार है। राजकीय सेवा, होटल व्यवसाय एवं व्यापार में भी जाटों का सानी नहीं है।

भारत में जातियों की विभाजन संख्या दो हजार से ऊपर है। इस तरह भारत की प्रत्येक जाति से जाट अधिक है क्योंकि जाटों के 2500 गोत्र है। कहते हैं ब्राह्मणों की संख्या इनसे अधिक है किन्तु कश्मीर का ब्राह्मण और मद्रास का ब्राह्मण सामाजिक सम्बन्ध में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है।, जबकि जाट चाहे भरतपुर का हो या जम्मू कश्मीर या तमिलनाडू का जाट, जाट ही है। खानपान और शादी व्यवहार में ये आपस में एक है।

ऐसी प्रबल संभावना है कि अन्य जातियों में जो जाट गोत्र मिलते हैं वे जाट ही हो, महाराज अग्रसेन भी संभवत: जाट ही है। भारतवर्ष से बाहर विदेशों में भी जाट आबाद है। प्राचीन समय में जाटों की संख्या आज से बहुत अधिक थी। जनरल कनिंघम के अनुसार जाटों का एक बड़ा हिस्सा राजपूत, अफगान और विलोचों में बँट गया। इतना ही नहीं यदि अन्य जातियों की उत्पत्ति पर गंभीरता से मनन किया जाए तो उनमें से अनेकों जातियाँ जाटों में से ही निकली साबित होगी। जैसे खाती, नाई, सुनार, लोहार, रोड, जोगी, बैरागी, विशनोई, चमार, सैनी (माली) आदि जातियों में जाटों के बहुत गोत्र पाये जाते हैं जो 60 से 80 प्रतिशत है। गुरूनानक देव द्वारा प्रचलित तथा गुरूगोविन्दसिंह द्वारा 17वीं शताब्दी में नवरूप लेने वाले सिक्ख धर्म ने यद्यपि जाटों में नव जीवन का संचार किया किन्तु जाट कौम को (जातीयता को) बहुत बड़ा आघात लगा। ये लोग जाट जत्थे से एक तरह से अलग ही जान पड़ते हैं क्योंकि वे पहले सिक्ख है जाट बाद में, इसी तरह मुसलमान जाट भी पहले मुसलमान और जाट पीछे है। जाटों की संख्या को अनेक छोटे छोटे सम्प्रदाय एवं धर्मों ने घटाया है। विश्नोई, उदासी, वैरागी, राधास्वामी, दादू और कबीर प्रवृति मतों में भी जाट कई हजार की संख्या में दीक्षित हो गये हैं। जैन धर्म ने तो जाटों के कई खानदानों को क्षत्रिय से वैश्य बना दिया है। वे ज्ञातृ (जाट) लोग कहाँ गये जिनमें स्वयं भगवान महावीर जन्मे थे! वे सब जैन धर्म के अनुयायी बन गये।

आर्य समाज ने जाटों के बौद्धिक स्तर को अवश्य विकसित किया है किन्तु इनकी संख्या को घटाया है। 1931 ई० एवं उसके बाद की जनगणना में कई हजार जाटों ने अपने को जाट न लिखाकर आर्य लिखाया था।

विदेशों में जाट (Jats in Foreign)

जिस तरह से यूरोप की ओर गए हुए जाट समुदायों को ईसाइयत निगल गई और ईरान, अरब, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान में रहने वाले जाटों की, जिनकी संख्या हजारों वर्षो तक वहाँ उतनी ही घनी रही थी जितनी कि इस समय भरतपुर, मथुरा, मेरठ, रोहतक जिलों में अथवा शेखावटी और जाँगल प्रदेशों में हैं, इस्लाम निगले हुए है।

पौराणिक धर्म के संघर्ष ने भी जाटों को 'राजपूत, गूजर और काठी' आदि अनेक दलों में बांट दिया है।

यूरोप में जटलैण्ड तो पूरा जाटों का था। स्कन्धनाभ (नार्वे, स्वीडन, डेन्मार्क) जर्मनी और स्पेन में भी जाटों की बहुत संख्या थी। प्राचीन समय में ये लोग भारत से जाकर वहाँ के शासक बने और आबाद हो गये थे। इनके कुछ जत्थे तो भारत की ओर लौट आये परन्तु जो रह गये उनको ईसायत निगल गई।

भारत के बाहर अन्य देशों में जाट रह रहे भारतीयों में जाटों की संख्या भी प्रचुर मात्रा में है। इनको ''भारतीय रोमा (जिप्सी)'' नाम से पुकारा जाता है। आज यूरोप तथा अमेरिका में रोमा जिप्सियों की संख्या लाखों हैं। ये लोग संसार के कई देशों में आबाद हैं जैसे - यूरोप, अमेरिका, कनाडा, यूगोस्लाविया, बुल्गारिया, ग्रीस, रूमानिया, जर्मनी, फ्रान्स, स्पेन, रूस, आस्ट्रिया, हालेण्ड, नार्वे और स्वीडन परन्तु दुनियाँ में सबसे अधिक 'रोमा' लोग यूगोस्लाविया में बसे हुए हैं। इस देश में स्कोपिए रोमा लोगों का सुन्दर शहर है। यहाँ पर इनकी संख्या चालीस हजार के लगभग है। ये लोग वेलग्रेड तथा निश शहरों में हजारों की संख्या में है। इसी प्रकार दक्षिणी फ्रान्स के ग्रास में भी एक सुन्दर रीमा वस्ती है। नार्वे, स्वीडन में भी ये लोग बड़ी संख्या में बसे है। ये भारतीय लोग कई सदियों पूर्व इन देशों में गये, जहाँ इन पर अमानवीय अत्याचार किये गये। कप्तान दलीपसिंह अहलावत एक जाट डाक्टर श्यामसिंह शशि जो यूरोपीय देशों में रहने वाले सभी रोमा जिप्सियों से मिले हैं के द्वारा लिखते है कि विदेशों में रहते हुए आज भी ये लोग अपने को भारतीय वंशज मानते हैं और जो लोग जाट हैं वे अपने को जाट कहलाना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये लोग अपने प्राचीन धर्म, संस्कृति और भाषा को ज्यों का त्यों रखे हुए है चाहें वे ईसाई बन गये हैं अथवा मुसलमान बन गये हैं। डेविड मैकरिटचे की सन् 1886 ई० में प्रकाशित एक पुस्तक से ज्ञात होता है कि जिप्सी राजस्थान के जाट है जो भरतपुर के महाराजा सूरजमल के राज्य से अपना वतन छोड़ कर विदेशों में जा बसे थे। यहाँ पर यह लिखना सम सामयिक होगा कि दीनबन्धु सर छोटूराम ने एक नारा बुलन्द किया था- ''धर्म (मजहब) बदल सकता है लेकिन खून नहीं बदल सकता।'' इससे पंजाब के हिन्दू जाट, सिक्ख जाट, मुसलमान जाट जाति पर जादू जैसा असर हुआ ओर सभी ने एक स्वर से सर छोटूराम को अपना नेता मान लिया और उनके संयुक्त राष्ट्रवादी दल में शामिल हो गये थे। अत: देश विदेशों में जाट चाहें किसी भी धर्म को मानने वाले हो, सब एक ही खून और वंश के हैं तथा जाट होने का गौरव रखते हैं।

पश्चिम जर्मनी से डॉ० एस. वी. सिंह वर्मा अमेरिका से श्री कृष्णकुमार अपने लेखों एवं पत्रों में निरन्तर जाट सभा एवं कौम की गतिविधियाँ भारत भेजते रहते हैं। कनाड़ा में भी जाट आबाद है। ब्रिटेन के जाट सभा के पदाधिकारी कई बार भारत आकर कौम की पहचान और गौरव को प्रदर्शित कर चुके है। संसार के प्रत्येक कौने में आबाद जाट, जाट सभाओं एवं जलसो के माध्यम से आपस में जुड़ रहे हैं।

22 जुलाई 1983 के दैनिक हिन्दुस्तान के अनुसार भारत की लोक सभा के अध्यक्ष डा. बलराम जाखड़ लन्दन गये, वहाँ उनकी भेंट ब्रिटेन की संसद के अध्यक्ष श्री बर्नार्ड वैदर हिल से राष्ट्र मण्डलीय एसोसिएशनों के कार्य दल की मीटिंग में हुई। श्री हिल ने अपने भारत प्रवास के समय की याद स्मरण करते हुए हिन्दी में कहा, ''मैं भी जाट हूँ।'' साथ ही उन्होंने पंजाब की अपनी सुखद स्मृतियों और उनके प्रसिद्ध एवं एतिहासिक स्थानों का स्मरण किया और बड़ी गर्म-जोशी से डा. जाखड़ का स्वागत किया। उल्लेखनीय है कि यह दोनों विश्व प्रसिद्ध नेता जाट किसान है और शाकाहारी है।

जाट इतिहास के लेखक ठाकुर देखराज ने अपने इतिहास में लिखा है कि ''पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय उनके साथ अनेकों यादव साइबेरिया तक पहुँचे और वहाँ यादवों ने बज्रपुर बसाया। ये लोग चीनी भाषा में यूची अथवा कुशान कहलाये। राजतरंगिणी का लेखक इन्हें तुरूष्क और आधुनिक विद्वान युहूची व यूचियों की एक शाखा मानते हैं। चीनी इतिहासकारों की एक राय यह भी है कि कुशान लोग 'हिगनु' लोग है। ये लोग हर हालत में जाट है। चौ.रामलाल हाला ने भी कुशाणों को जाट लिखा है। कुशान वे लोग है जो पाडवों के साथ महा प्रस्थान में कृष्णवंशियों में से गये थे। कृष्णवंशियों को संस्कृत में कार्ष्णेय तथा कार्ष्णिक कहा है जिसका अपभ्रंश शब्द कुशन बन गया जो जाटों के अन्तर्गत पाये जाने वाले कुशवान या कुशान गोत्र है। जिस प्रकार भारत वर्ष में जाट राज्य के लिए 'जाटशाही' का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार कुशानवंशी राजाओं के लिए भी 'शाही' अथवा 'शहन्शाही' का प्रयोग किया जाता था 'देवसंहिता' में जाटों को देव या देवताओं के समान लिखा है। कुशानवंशी राजाओं के लेखों में इनकी उपाधि देव पुत्र लिखी हुई मिलती है।''

''मध्य एशिया तथा चीन में भारतीय संस्कृति'' के लेखक सत्यकेतु विघालंकार ने लिखा है कि ''कुशाण वंशी राजा यहुशि जाट थे।''

''जाट्स दी ऐनशन्ट् रूलर्स'' में डा. वी. एस. दहिया लिखते हैं कि कुशाण लोगों का शुद्धनाम कसवान है तथा इस गोत्र के जाट आज भी हरियाणा व राजस्थान राज्यों में आबाद है। अत: इन उदाहरणों से सिद्ध है कि कुशाण लोग जाट थे।

चन्द्रवंशी सम्राट ययाति के पुत्र तुर्वसु के शासित देश का नाम तुर्कस्तान-तुर्किस्तान-तुर्की पड़ा। इसी सम्राट तुर्वसु के नाम पर तवंर-तोमर जाट वंश प्रचलित हुआ। इस देश में बसे चन्द्रवंशी आर्यो का नाम उनके सौन्दर्य के कारण 'तुर्बस' तथा भाषा-भेद से जाट बाद में 'तुर्क'

पड़ा। 'जाट्स दी ऐनेशन्ट रूलर्स' के लेखक डा. दहिया ने लिखा है कि तुरवंश (तवंर) की प्रधानता के कारण इस विशाल भूमि खण्ड का नाम तुर्किस्तान पड़ा और जब यहाँ तातराण वंश की प्रधानता हुई तब यह देश तातारी कहलाया।

अत: अब स्पष्ट है कि शक, कुशाण, तुर्क, तुर आदि क्षत्रिय आर्य हैं। जो भारत वर्ष से बाहर गये, वहाँ वस्तियाँ बसाई तथा राज्य स्थापित किये और समय अनुसार अपने पैतृक देश भारत में लौट आये। इनमें से शक, कुशाण, तुर, पारद, पह्लव जाट वंश (गोत्र) है। कुछ इतिहासकारों ने यह लिखने की भूल की है कि जाट लोग शक, कुशाण आदि विदेशों से आने वालों की सन्तान है। सच्चाई यह है कि शक, कुशाण आदि अलग-अलग जाट गोत्र है, अन्य जाट गोत्रों की उत्पत्ति इनसे नहीं हुई बल्कि आदि सृष्टि से वर्तमान तक समय-समय पर क्षत्रिय आर्यो के संघ किसी प्रसिद्ध सम्राट एवं स्थान आदि के नाम पर जाट गोत्र तथा उनके शाखा गोत्र प्रचलित हुए है।

चीन तथा मंगोलिया में जाट

''क्षत्रिय जातियों का उत्थान पतन एवं जाटों का उत्कर्ष'' के लेखक योगेन्द्र पाल शास्त्री के अनुसार चीना या चीमा क्षत्रिय चन्द्रवंशी सम्राट ययाति के पुत्र अनु के वंशज है। ये लोग आर्यावर्त से चीन देश में गये और वहाँ बस्तियाँ बसाकर राज्य स्थापित किया। चीन शब्द के विषय में प्रो. हीरन लिखते हैं कि चीन शब्द हिन्दुओं का है और हिन्दुस्तान से ही आया है। मंगोल, तातार और चीनी लोग अपने को चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानते हैं। अनेक इतिहासकार चीन या चीमा जाटों को ही चीन देश के आदि शासक मानते हैं।

चीन वालों का भारत से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहा कि यहां ब्राह्मण लोग धर्म प्रचार के लिए चीन को जाते थे और चीन निवासी यहाँ आकर फिर से आर्यो के समाज में मिल जाते थे। सर्व प्रथम आर्य लोग 'चीनी' बनकर चीन गये थे, इसलिए चीनियों के आर्य वंशज होने में जरा भी सन्देह नहीं है। इसकी पुष्टि अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में की है जिनमें पं. रघुनन्दन शर्मा भी है।

महाभारत काल में चीन देश में चीना-चीमा, औलिक, पौरव आदि अनेक जाट वंशों का राज्य था। चीन के उत्तर तथा मंगोलिया में अहलावत, गड्गण, परतड्गण, अर्ह, पारद, चट्ठा-चगता आदि जाटों के राज्य थे। उस समय अहलावत जाटों का प्रजातन्त्र राज्य इलावृत देश में था जो आज मंगोलिया में अल्ताई नाम से कहा जाता है।

ठाकुर देशराज के लेखानुसार ''अब भी टाँग (ताँग) पर्वतमाला तड्गण जाटों के नाम से मानसरोवर से आगे है। मौर्य काल में यादव कुल के हैंगा जाट भारत वर्ष से चीन गये और वहाँ पर हिंगू पहाड़ एवं हुंगहू नदी के किनारे काफी समय तक राज्य किया और फिर स्वदेश आ गये जो आज कल हैंगा कहलाते हैं।'' हैंगा ही हगा अथा अग्रे के नाम से वर्तमान में जाने जाते हैं। हैंगा शब्द को चीनी भाषा में हिंगनू बोलते हैं। इन हैंगा जाटों के नाम पर हिंगू पर्वत तथा हुंगहू नदी

चीन देश में है। (हैगा (हगा) जाट उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में काफी संख्या में आबाद है। इनके वहाँ 360 गाँव है।) हिंगू लोगों की धाक और उनके राज्य की चर्चा चीन देश में अब तक व्याप्त है।

मि० कनिंघम 'सिक्ख इतिहास' में लिखते हैं कि जाटों के अन्दर एक चीन गोत्र है जिससे उनका चीन जाना सिद्ध है। विदेशों में जातियाँ या तो उपनिवेश स्थापना के लिए जाती है अथवा धर्म प्रचार के लिए। जाटों ने दोनों ही कार्य चीन में जाकर किये।

'जाट्स दी ऐनसन्ट रूलर्स' के लेखक डा० वी० एस० दहिया ने लिखा है कि ''चीनियों के कहने के अनुसार हिगनू लोग यूची (जाट) लोगो, का ही एक हिस्सा था। इन यूची या जूटी लोगों के दो बड़े खण्ड (विभाग) थे जिनमें से 'ता-यू-ची' जिसका अर्थ है - महान (प्रसिद्ध, शक्तिशाली) जाट संघ और दूसरे का नाम 'सिऊ-यू-ची' था, जिसका अर्थ है छोटा साधारण जाट संघ। यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार हैराडोट्स ने जाटों के इन दो बड़े विभागों को मस्सा गेटाई, जिसका अर्थ है ''महान जाट'' (Great Jats) और थीस्सा गेटाई, जिसका अर्थ है छोटे जाट (Little Jats) लिखा है।'' जाटों का निवास चीन के फ्रांस प्रान्त तथा बाहरी मंगोलिया था।

चीन में तांग वंश के जाट राजाओं का शासन भी रहा है इस तांगवंश के शासन का प्रारम्भ 618 ई० में हुआ था और इसका प्रथम राजा काओत्सु था, जिसने खोतन देश को भी अपने अधीन कर लिया था।

चीन की एक प्राचीन जनश्रुति के अनुसार अशोक (273 ई.पू. से 237 ई.पू.) के समय कुछ बौद्ध प्रचारक चीन लेकर गए थे और उनके द्वारा वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया गया था। यह पूर्व विदित है कि सम्राट अशोक मौर्य-मोर वंशज जाट थे।

सीथिया, मध्य एशिया, कैस्पियन सागर, यूरोपियन, टर्की, ग्रीस (यूनान) ताशकन्दी, पेशावर, मंगोलिया, समरकन्द, ईरान (फारस) अफगानस्तिान, एशिया माइनर, गजनी, जियोर्जिया कौंचवन (कराँची) यूरोपीय देश, ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड, आस्ट्रिया, हंगरी, जर्मनी, लक्षमवर्ग, तोरमण्डी, फ्रान्स, बेल्जियम, हालेण्ड, डेन्मार्क आदि देशों में जाट या तो आबाद थे अथवा शासक थे।

जिस तरह से भारतवर्ष में गंगा व यमुना नदियों के मैदानों से लेकर सिन्ध नदी तथा उसकी पाँच सहायक नदियों के मध्य भूभाग तक पूरे उत्तरी भारत की विशाल एवं उपजाऊ भूमि पर जाटों की घनी संख्या तथा शासन, आदि सृष्टि से रहता आया है, ठीक इसी तरह से सीथिया व मध्य एशिया में भी डेन्यूब नदी तथा नोस्टर नदी के मध्य के उपजाऊ भूभाग से लेकर पूर्व में तारिम नदी की घाटी तक इस विशाल भूखण्ड पर जाटों की घनी आबादी तथा शासन आदि सृष्टि से रहता आया है। प्राचीन समय से आज तक ऐसा कोई समय नहीं है जब देश विदेशों में जाटों का निवास, शक्ति तथा शासन न रहा हों।

'रेसिज आफ मेन काइन्ड' के लेखक कनर्विन केफर्ट के अनुसार आर्य शाखायें

जिनको नारडिक कहा गया, ने 7700 ई० पू० में तिएनशान पर्वत माला को पार करके उत्तरी क्षेत्र के देशों में अपना निवास स्थान बना लिया, बाद में ज्ञात हुआ कि ये लोग गेटी (जाट) है जो कि वहाँ हजारों वर्ष तक रहे। इनके देश की सीमा पश्चिमी तुर्किस्तान के पर्वतीय क्षेत्र, काशगर तक तिएनशान पर्वतमाला से बाल्खस झील तक, रूस के किर्गीज प्रान्त (जो कि पश्चिमी तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में है) जिसमें सात नदियाँ हैं, सिरदरिया का ऊपरी भाग, इस्सीक झील, चू नदी एवं इली नदी के बीच का क्षेत्र, ये सब शामिल थे। आर्य नस्ल की इस महान नॉरडिक शाखा के पूर्व पुरूष जाट लोग ही थे। ''

लगभग 4300 ई० पू० में ये जाट लोग उत्तर की ओर बढ़कर पश्चिम में किंगिज के मैदानों (रूस में, पश्चिमी तुर्किस्तान का उत्तरी भाग) में, और यूराल पर्वत तथा कैस्पियन सागर तक फैल गये। अन्त में ये लोग पांच भागों में अलग-अलग हो गये। जिनके नाम ये हैं: - (1) शिवि (2) घुमण (3) गेटा (जाट जिन्होंने अपना नाम जाट ही रहने दिया) (4) Massagetae (मस्सागेटे महान जाट संघ) (5) शक। ये सब जाट गोत्र है। शिवि लोग 2300 ई. पू. में अलग हो गये जबकि घुमण 1700 ई. पू. में और गेटे का जाट 1000 ई. पू. में अलग हुए। शक तथा महान जाट संघ वहीं पर रहे, जब तक कि वे कुशाण, तुखारी और श्वेत हूणों के नाम पर फैले। ये सभी जाट थे।

कलविन केफर्ट ने आगे लिखा है कि ''इन्हीं जाटों का एक संघ माँडा कहलाया''। जाटों ने अपने राजा तानोसिस के नेतृत्व में लगभग 1323-1290 ईश्वी पूर्व मिश्रियों को पराजित किया और वहाँ से वापिस आकर पश्चिमी एशिया का बहुत सा क्षेत्र जीत लिया। इस क्षेत्र को अपने मित्र मांडा लोगों के राजा सोनुर्स के अधीन करके अपना सहायक बना लिया।

2200 वर्ष ई. पू. में मौर्य-मौर जाटों ने लेस्सरजब क्षेत्र तथा अरारट पर्वत (तुर्की में) से मिश्र के राजवंश के ग्यारहवें राजा पर आक्रमण किया। इन मौर जाटों की भूमि, ''ज्याती या जाटों की भूमि'' कहलाती थी। मौर्य जाटों का राज्य तुर्किस्तान के अन्य क्षेत्रों, खोतन प्रदेश तथा कश्मीर में भी था।

जब सेल्यूकस भारतवर्ष से अपने देश यूनान को वापिस गया तो अपने साथ पंजाब के जाटों को सेना में भरती करके ले गया। यूनान में इन जाट सैनिकों ने एक बस्ती बसाई जिसका नाम 'मौर्या' रखा और एक टापू का नाम 'जटोती' रखा। उस समय जटोती पर मौर्य जाट सेना ने शासन किया।

पी. साईकेस (P.Sykes) ने लिखा है कि 2600 ईस्वी पूर्व में जाटों का राज्य लेस्सरजन के पूर्व में स्थापित था। इन लोगों ने सुमेर, असीरिया, बेबीलोनिया और इलम के राज्यों को अपने अधीन कर लिया और इन सब राज्यों के राजाधिराज बन गये थे। 2500 ई. पू. में इन जाटों का सम्राट त्रीकन था जिसका राज्य पश्चिमी एशिया पर था।

कुरूवंश

कुरू जाटों का राज्य उत्तरी कुरू (साइवेरिया) देश पर था। कुरू नदी काकेशस (कॉफ) पर्वत से निकलकर रूस के प्रान्त एजरबैजान में से बहती हुई पूर्व की ओर कैस्पियन सागर में गिरती है। यह कुरू नदी कुरू जाटों के नाम पर कहलाती है। इराक के उत्तर पशिचम में कुरू पीडियन या कुरू जाटों का देश कहलाता है जो कि ठीक ऐसा ही है जैसा कि हरियाणा में कुरूक्षेत्र, कुरू जाटों की भूमि है।

मद्रवंश–

इस वैदिक कालीन चन्द्रवंशीय मद्र जाट वंश का राज्य उत्तर मद्र एवं दक्षिण मद्र पर था। दक्षिण मद्र पंजाब में तथा उत्तर मद्र कैस्पियन सागर तथा काला सागर के क्षेत्र में था। महाभारत युद्ध में इनकी सेना उत्तर मद्र में भी आई थी। इनका सम्राट शल्य था। जिसकी बहिन माद्री नकुल व सहदेव की माता थी।

चीनी इतिहासकारों के अनुसार 2600 ई.पू. में दहिया जाटों का शासन कैस्पियन सागर के क्षेत्र पर था। ये लोग वहाँ से अमू दरिया तथा ईरान के उत्तरी भाग तक फैल गये। इन लोगों का 331 ई.पू. में सिकन्दर से युद्ध अरवेला (अमू दरिया के उत्तर में) के स्थान पर हुआ था। इन लोगों के नाम पर इनका देश 'दहिस्तान' कहलाया। अट्रेक नदी के उत्तर में अरबल की उपजाऊ भूमि में इनके नाम से एक 'दहिस्तान' जिला भी है।

1000 ई.पू. वेन जाटों का राज्य वेन झील (तुर्की में) के क्षेत्र पर था। इसी प्रकार मानवंश का राज्य कैस्पियन सागर के दक्षिण में था जो मन्नाई राज्य कहलाता था जो कि आज अर्मेनिया (अरीमान) नाम से है। शक जाटों के नाम पर सीथिया देश नाम पड़ा। सीथिया एक प्राचीन देश था जो कि काफी लम्बे क्षेत्र में होकर फैला हुआ था।

इन सीथियन (शक) लोगों ने यूनान पर आक्रमण किया और एथेन्स पर अधिकार कर लिया। इन लोगों के विषय में इतिहासकार होमर एवं हेसीउड़ ने भी लिखा है कि वे लोग दूध पीने वाले थे तथा युद्ध इनका व्यवसाय था। यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार थूसीडाइड्रस ने इन सीथियन जाटों के विषय में लिखा है कि 'एशिया अथवा यूरोप में कोई भी जाति (राष्ट्र) नहीं थे जो सीथियन जाटों के मुकाबले में खड़े रह सके।'

थूसीडाइड्रस लिखता है कि ''इनकी संख्या इतनी अधिक थी तथा वे बहुत ही भयानक थे। जब भी वे संयुक्त हो जाते थे तब उनको कोई भी नहीं रोक सका।'' इसी प्रकार यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडोट्स, जिसको इतिहास का पिता कहा गया है तथा अन्य कई इतिहासकारों के कथनानुसार – ''जाटों में जब भी एकता हुई तब संसार की कोई भी जाति बहादुरी में इनका मुकाबला नहीं कर सकी।'' हैरोडोट्स लिखता है कि थ्रेस की जातियों में जाट लोग सबसे अधिक बहादुर तथा ईमानदार थे। वे गाने बजाने के प्रेमी थे तथा अन्य जातियों में सबसे श्रेष्ठ एवं न्यायकारी थे।

रूस में भारतीय जाट –

रूस की अनेक जातियों के नाम भारतीय जाटों से मेल खाते हैं जैसे रूस के आंतस (Antas) भारतीय आँतल (Antals) तथा रूस के वैन (Ven) भारतीय वैनीवाल-वैन (Benhwal-Veniwal) आदि। रूस की बड़ी आबादी के लोग स्लाव (Slav) कहलाते हैं। यह स्लाव शब्द सकलाव से निकला है जो कि भारतीय पुराणों में सकरवाल लिखा है और भारतीय जाटों का गोत्र सकरवार (सिकरवार) है। सिकरवार शक जाट थे जिनका मध्य एशिया में सोगदियाना प्रदेश पर शासन छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व में था तथा जिनके राज्य में बुखारा, समरकन्द ताशकन्द आदि नगर थे।

भारतीय मध्य एशिया तथा यूरोप के जाटों की पहिचान एवं समानता के लिए क्रिमिया (Crimea) एवं पश्चिमी रूस के अन्य स्थानों से की गई खुदाइयों जिनमें अनेक ऐसी चीजे प्राप्त हुई है जिनका प्रयोग भारतवर्ष की जाट जाति में आज भी होता है। अतः दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि रूस निवासी स्लाव लोग, तथा उत्तरी यूरोपियन लोग जाट जाति से सम्बन्धित है। ऐसा ही विश्वास डा. वी. एस. दहिया को है जो उन्होंने अपनी पुस्तक 'जाट्स दी एनशेन्ट रूलर्स' में व्यक्त किया है।

'मध्य एशिया का इतिहास' के लेखक राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि प्राचीन समय के शक, रूस के स्लाव लोगों के रूप में फिर से प्रकट हुए हैं, जो आज भी विद्यमान है। पश्चिमी शक लोग बहुत देशों में प्रवेश कर गये और भारतवर्ष में ब्राह्मण जाट, गूजर, राजपूत आदि हिन्दू जातियों में लीन हो गये। रूसी भाषा संस्कृत भाषा से मिलती जुलती है। इसका कारण है कि रूस वाले लोग, शक लोगों के वंशज है और शक लोग आर्य है जो प्राचीन समय से भारत वर्ष व ईरान में आबाद है। कई शताब्दी बीतने के बाद अत्यधिक संख्या में शक लोग पुनः स्वदेश भारत लौट आये। शक लोग क्षत्रिय आर्य जाट भी है तथा आज शक गोत्र के जाट बड़ी संख्या में विद्यमान है।

रूस और भारत में रहने वाले सीथियन्स या शकों का सन् 528 ई० तक घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है जब तक कि शक राजा मिहिरकुल को जाट सम्राट यशोधर्मा वरिक ने हराया। रूस निवासियों एवं भारतीयों की भाषा संस्कृत थी तथा संस्कृति भी एक रही है। भौगोलिक स्थिति के कारण रूस एवं भारतीयों की संस्कृति एवं संस्कृत भाषा एवं संस्कृति का मूल सम्बन्ध आज भी जीवित है। निष्कर्ष स्पष्ट है कि रूस के स्लाव निवासी जो कि बड़ी संख्या में रूस तथा यूरोप के अन्य अनेक प्रान्तों एवं देशों में निवास करते हैं, सभी जाट हैं। इनके अलावा भी इन महाद्वीपों में अलग-अलग जाट गोत्रों के लोगों की घनी संख्या है जिनमें कम ही लोग यह जानते है कि हम जाट है।

''जाट वीरों का इतिहास'' के लेखक के अनुसार मध्य एशिया (रूस) में बोले जाने वाले जाट गोत्रों के कुछ नाम निम्न प्रकार है :-

	रूसी नाम	*जाट गोत्र*
1.	Avar	Abara अवारा
2.	Allan	Ailawat अहलावत
3.	Anta	Antal आँतल
4.	Asi	Asiag असियाग
5.	Bogda	Bogdavat बोगदावत
6.	Balgari	Bal-Ballan बालान
7.	Balkar	Balhara बल्हारा
8.	Ven	Benival बेनीबाल–बैन
9.	Chol	Chahal चहल
10.	Chimir	Cheema चीमा
11.	Daghe-Dahi	Dahiya दहिया
12.	Dashvhar	Daswal देशवाल
13.	Kirkin	Kalkil कलकल
14.	Kang	Kang कांग
15.	Kula	Kular कूलर
16.	Hiung	Henga हैंगा
17.	Noyan	Nain नैन
18.	Shor	Shoran सौराण – श्यौराण
19.	Timir	Tomar तोमर–तंवर
20.	Wark	Virk विर्क–वरिक
21.	Saraut	Sahravat सहरावत
22.	Jubolo	Johl जोंहल
23.	Gilli	Gill गिल
24.	Dol	Dhul दुल–टिल्लू

'जाट्स दी ऐनशन्ट रूलर्स' के लेखक डा. बी. एस. दहिया के अनुसार मध्य एशिया (उज्बेक व आसपास) में वर्तमान में पाए जाने वाले कुछ जाट गोत्र निम्नलिखित है :–

	रूस में वर्तमान नाम	**जाट गोत्र**
1.	Karabura	Bura बूरा
2.	Tatar	Tatran तातराण
3.	Jani	Janwar जनवार
4.	Simarchim	Sihmar शीहमार
5.	Arbat	Arab अरब

6.	Gedaoi-Gada	Gathwal गठवाल
7.	Bagurlu	Bagarwal बागरवाल

यूरोप तथा अफ्रीका में जाट

यूरोप तथा अफ्रीका में भी जाटों का निवास, शक्ति तथा साम्राज्य रहा है। यूरोप में जाट को गेटा-गेटे, गोथ तथा जूट आदि नामों से पुकारा जाता है। ये नाम जाट से वहाँ की भाषा में 'गरिमज के परिवर्तन के सिद्धात' के अनुसार बनते हैं। यूरोप में पूनिया, तोखर, उतार, शिवि, कृमि, असि, असियाग, बल-बालान, कूल्लर, उदर, चावन, गाल्लान-गाल, रोज, हंस, मौर, ढिल्लो, घणगस एवं यदुवंशी जाटों का ब्यौरा हमें मिलता है जो वहाँ आबाद रहे और शक्तिशाली शासन भी किया।

इतिहासकारों के अनुसार मध्य एशिया तथा उत्तरी यूरोप के सिथियन्स ने सदा अपनी पड़ौसी जातियों पर हमले किये। जाट मध्य एशिया से भिन्न-भिन्न स्थानों पर फैल गये, जिनमें से अधिकतर यूरोप में आबाद हो गये जहाँ पर उनको गोथ-गोट-जूट नाम से पुकारा गया। शिवि जाट स्कोण्डेनेबिया और स्पेन में गये। इन जाटों में से एक समूह भारतवर्ष से ईरान और फिर वहाँ से जाटों के अन्य दलों के साथ यूरोप में बढ़ गया।

जाट इतिहास के लेखक ठाकुर देशराज ने लिखा है कि ''जाट लोगों ने स्कैण्डेनेविया में ईसा से 500 वर्ष पूर्व प्रवेश किया था। उनके देवता का नाम ओडिन था। वहाँ के प्रसिद्ध इतिहासकार मि० जन्सटर्न स्वयं अपने को ओडियन की सन्तान मानते हैं। हैरोडोटस लिखता है कि शक द्वीप के निवासी जब मरते थे तो उनके प्यारे घोड़े उनके साथ जलाये जाते थे और जब स्कन्धनाभी (स्कोण्डेनेविया) के जित (जाट) मरते थे तो उनके घोड़े गाड़ दिये जाते थे। स्कन्धनाभ वाले और अमू दरिया के किनारे रहने वाले जित (जाट) लोग सजातीय मृतक पुरूष की भस्मी पर ऊँची वेदी बनाया करते थे। जिस समय जिट (जाट) लोगों की बलाग्नि से सारा यूरोप सन्ताप पा रहा था, उस समय में हथियारों की पूजा की प्रथा चरमोत्कर्ष पर थी। कहा जाता है कि प्रचण्ड जाट वीरों ने अटेला और एथन्स नगर में अत्यन्त धूमधाम के साथ अपने हथियारों की पूजा अर्चना की थी।''

स्कन्धनाभ में बस जाने के बाद जाटों का नाम असि भी पड़ गया था। यह नाम उस समय पड़ा जबकि उन्होंने जटलैण्ड व गोथलैण्ड (गॉटलैण्ड) बसाये। एड्डा में लिखा है कि ''स्कन्धनाम में प्रवेश करने वाले जेटी अथवा जट लोग असि नाम से प्रसिद्ध थे, उनका पूर्व निवास स्थान असिगाई था।'' असिगाई व असिगढ़ नीमाड़ (भारत) में है।

जटलैण्ड - यह डेन्मार्क के मध्य में एक प्रान्त है।

गोथलैण्ड - (गाटलैण्ड) वह स्वीडन देश का एक द्वीप पूर्वी समुद्र में है।

जाटों का शासन रोमन साम्राज्य पर भी था जो इन्होंने घोर संग्राम करके प्राप्त किया था। जाटों ने इटली से बाहर स्पेन और गॉल (फ्रांस) के बीच में भी अपना साम्राज्य स्थापित

किया जो 300 वर्ष तक कायम रहा। सन् 446 ई० में हूण लोग रोम को पराजित करते हुए गाँल में प्रवेश कर गये जहाँ पर रोमनी व गाथों (जाटों) ने मिलकर हूणों को परास्त किया।

जर्मन में जाट –

जाटों का निवास एवं शासन जर्मनी में भी रहा है। ये लोग ईसा से लगभग 500 वर्ष पूर्व जर्मनी में पहुँचे। यूरोप के अन्य देशों, इटली, फ्रान्स, स्पेन, यूनान, इगलैण्ड, पुर्तगाल आदि पर जाटों के आक्रमण एवं संघर्ष का ब्यौरा यूरोपीय इतिहास में भी मिलता है कि उसमें अधिकतर जाट जर्मन एवं स्केण्डेनेविया के रहने वाले थे।

श्री मैक्समूलर ने भी जर्मनी में आर्य रक्त को स्वीकार किया है। सटीटस ने लिखा है कि जर्मन के लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार, रस्म, रिवाज, आकृति तथा प्रतिदिन के क्रिया कलाप एवं नित्यकर्मो से स्पष्ट पता चलता है कि ये लोग और ईरान के जिट, कठी, किम्बरी (कृमि) और शिवि चारो जाट एक वंश है।

कर्नल टॉड लिखता है कि घोड़े की पूजा जर्मनी में सू, कट्टी, सुजोम्बी और जेटी (जाट) नामक जातियों ने फैलायी है, जिस तरह कि स्केण्डेनेविया में अस जाटों ने फैलायी। कर्नल टॉड भारत के जाट एवं राजपूतों की जर्मन लोगों से कई तरह समानता आँकता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार टसीटस के अनुसार – "जर्मनी और स्कन्धनाम के असि लोग जाट वीर ही थे।" प्राचीन काल में जर्मनी पर शिवि गोत्र के जाटों का राज्य व निवास था। आर्य लोग जिस प्रकार का सद्व्यवहार अपनी गृहणियों अर्थात् गृह लक्ष्मीयों से करते हैं ठीक उसी प्रकार का श्रेष्ठ व्यवहार जर्मनी के लोग अपनी नारियों के साथ करते थे।

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता कि जाट जिस किसी भी देश में गये वहाँ पर इन्होंने उस देश की सभ्यता को नष्ट नहीं किया, जिस प्रकार कि भारत में आने वाले दुर्दान्त आक्रान्ताओं ने किया। भारतीय जाटों ने उनकी हर अच्छी बात को ग्रहण किया। ये अपनी सीमा एवं स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लालसी अवश्य रहे। युद्ध के समय वे सैनिक और शान्ति काल में सुयोग्य शासक एवं श्रेष्ठ कृषक साबित होते हैं। जितना सम्भव हो सकता था मर्यादित भाव से इन्होंने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का यूरोप में प्रचार किया। जाटों ने शस्त्रपूजा, नेता चुनने की प्रथायें तथा मृतकों को जलाने का रिवाज आदि प्रचलित किये। शैलम नदी (जर्मनी) के किनारे जो स्तूप उन्होनें खड़ा किया था, वह इनकी कीर्ति, यश एवं वीरता के साथ-साथ इसका भी प्रमाण है कि वे अपनी सभ्यता के प्रचारक व प्रेमी थे। यूरोप के युद्धों में एक भी ऐसा उदाहरण खोजने से नहीं मिलता कि जाटों ने पराजित देश के स्त्री, पुरूषों एवं बालकों को दास बनाया हो अथवा उन्हें मौत के घाट उतारा हो। जाटों ने उस देश की स्त्रियों का सम्मान किया तथा अपने पूर्वजों की मर्यादानुसार शरणागतों की रक्षा करके श्रेष्ठता एवं दरियादिली के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किये।

जर्मनी के जाटों ने देश काल की परिस्थितियों के अनुसार अपने प्राचीन वैदिक व बौद्ध धर्म को ईस्वी चौथी-पांचवी शताब्दी में छोड़कर ईसाई धर्म को अपनाया किन्तु इसमें किंचित

मात्र भी सन्देह नहीं कि उन्होंने भारत के गौरवशाली मस्तक को इस बात के लिए ऊंचा कर दिया कि जर्मनी जैसे प्रबल राष्ट्र पर अपना बसन्ती झण्डा फहराया और आज भी जर्मन नागरिकों के रूप में अपने देश का मस्तक उन्नत कर रहे हैं।

ब्रिटेन (इगलैंड) में जाट –

ब्रिटेन के मूल निवासी असभ्य लोग थे जिन्हें प्राचीन पत्थर युग के लोग कहा जाता है। वे खेती वाड़ी करना नहीं जानते थे बल्कि जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट पालते थे। कुछ समय बाद ब्रिटेन पर आईवेरियन लोगों ने आक्रमण किया जिन्होंने यहाँ खेती बाड़ी एवं पशुपालन प्रारम्भ किया। इनके बाद एक अधिक सभ्य जाति आई जिसे केल्ट (Celt) कहते हैं। इन्होंने लगभग 600 ई.पू. में ब्रिटेन पर आक्रमण किया और वहाँ पर बस गये।

केल्ट जाति के लोग आर्य वंशज थे। वे लम्बे, गोरे तथा चौड़े माथे के लोग थे, इनके बाल पीले थे तथा ये लोग आर्यान भाषा बोलते थे। ये वीर योद्धा एवं लोहे के औजारों, हथियारों का प्रयोग अत्यन्त निपुणता के साथ करते थे। खेती बाड़ी तथा शिल्प कला में दक्ष थे। इन व्यक्तियों ने दो दलों में ब्रिटेन पर आक्रमण किये। पहले दल के लोग गाइल्डस या गेल्स (Goidels or Gaels) कहलाते थे जो कि आज भी आयरलैण्ड और स्कॉटलैंड में पाये जाते हैं। लगभग 600 ई.पू. में दूसरे दल के लोग ब्रिथोन्स या ब्रिटोन्स (Brythons or Britons) कहलाते थे जिनके नाम पर इस टापू का नाम ब्रिटेनिया (ब्रिटेन) पड़ा।

अतः स्पष्ट है कि इस द्वीप (टापू) का ब्रिटेन नाम आर्यवंश के लोगों के नाम पर प्रचलित हुआ। स्मरण रखा जाना चाहिए कि जाट भी आर्य वंशज है।

ब्रिटेन पर केल्टस लोगों के पश्चात् रोमनों ने आक्रमण किया एवं शासन किया। इनका ब्रिटेन पर शासन 43 ई. से सन् 410 ई. तक 300 वर्ष रहा। रोमनों के चले जाने के पश्चात् वहाँ जूटस, ऐंगल्स और सैक्सन्स (ये सभी जाट जाति के लोग थे) आए और शासन किया। इनके आक्रमण तथा शासन का काल 410 ई. से 825 ई. तक था।

ब्रिटेन से रोमनों के जाने के पश्चात्, ब्रिटेनवासी अत्याधिक दुर्बल और असहाय हो गये थे। इन लोगों पर स्कॉटलैण्ड के केल्टिक कबीलों, पिक्ट्स और स्कॉटस ने आक्रमण कर दिया। ब्रिटेन निवासियों का इससे अधिक नुकसान हुआ तथा इनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वे इन आक्रमणकारियों का मुकाबला कर सके। अतः सहायता के लिए इन्होंन जूट (जाट) लोगों को बुलाया। जूट्स ने उसी समय ब्रिटिश सरदार बरटिगर्न के आमन्त्रण को स्वीकार कर जटलैण्ड से जाटों की एक विशाल सेना अपने जाट सरदार हेगिंस्ट और होरसा के नेतृत्व में सन् 449 ई० में केन्ट (Kent) में उतार दी। इन्होंने पिकट्स और स्काट्स को हराया और वहाँ से बाहर निकाल दिया। उन्हें खदेड़ने के पश्चात् जाट ब्रिटेन के लोगों के विरूद्ध हो गये और उन्हें पूरी तरह से अपने वश में कर लिया तथा 472 ई. तक पूरे केन्ट पर अधिकार कर लिया और आबाद हो गये। इसके अलावा जाटों ने अपना निवास व्हिट (Wigth) द्वीप में भी किया।

'इंग्लैण्ड का इतिहास' के लेखक अंगेज जाति की उत्पत्ति और बनावट के सम्बन्ध में लिखते हैं कि ट्यूटानिक अर्थात् जूट, एंगल, सैक्शन और डेन लागों का रक्त और संस्थाए बहुत कुछ आधुनिक इंग्लैण्ड में पाए जाते हैं। ट्यूटानिक सिद्धांत को मानते हुए एवं स्वीकार करते हुए वह लिखते हैं कि ब्रिटिश जाति मिले जुले लोगों की जाति है, जिसमें ट्यूटानिक तत्व प्रधान है जबकि केल्टिक तत्व भी पश्चिम में और आयरलैण्ड में बहुत कुछ बचा हुआ है। इसका सार यह है कि इंग्लैण्ड द्वीप समूह के मनुष्यों की रगो में आज भी अधिकतर जाट रक्त वह रहा है। क्योंकि केल्टिक आर्य लोग तथा जूट, एंगल, सैक्शन और डेन लोग जाट वंशज थे। आज भी वहाँ पर अनेक जाट गोत्रों के मनुष्य विद्यमान है जो कि धर्म से ईसाई है।

स्केण्डेनेविया में रहने वाले जाटों को नार्थमेन–नॉरमेन, विकिंग्स और डेन आदि नामों से पुकारा गया। ये लोग शक्तिशाली, बहादुर और उग्र स्वभाव के थे। वे अपने जहाजों से ग्रीनलैण्ड व अमेरिका में भी पहुँचे। इन लोगों ने रूमसागर पर आधिपत्य कर सिसिली और दक्षिणी इटली में भी साम्राज्य स्थापित किया था। इनके एक दल ने जो रूस गया था उसने वहाँ राज्य स्थापित किया। सन् 913 ई. में इनके एक दल से फ्रान्स के कुछ क्षेत्र पर विजय प्राप्त की ओर वहाँ के निवासी बन गये। इन लोगों के नाम पर ही यह क्षेत्र नॉरमन्डी कहलाया।

साधु एडवर्ड की मृत्यु 1066 ई. में होने पर हेरोल्ड इंग्लैण्ड का राजा बना। नॉरमण्डी के नॉरमेन डयूक विलियम ने 1066 ई. में इंग्लैण्ड पर हमला कर दिया। राजा हेरोल्ड ने नॉरमन का अपनी अंग्रेजी सेना से सामना किया। अन्त में 24 अक्टूबर, 1066 ई. में हेस्टिंग्स अथवा सेनलेक के स्थान पर नॉरमन सेना ने अंग्रेजी सेना को हरा दिया। हेरोल्ड अदम्य साहस एवं बहादुरी से लड़ा परन्तु उसकी आंख में तीर लग जाने से वह युद्ध भूमि में ही वीरगति को प्राप्त हो गया। नॉरमण्डी के डयूक विलियम का वैस्टमिन्स्टर में इंग्लैण्ड के राजा के रूप में राज्यभिषेक किया गया।

इतिहासकारों एवं विद्वानों ने इन नॉरमनों के बारे में लिखा है कि नॉरमन अन्य नहीं थे बल्कि ये जटलैण्ड के जूट या जाट थे जिन्होंने फ्रान्स के उत्तरी समुद्री तट पर अधिकार कर लिया था। वे ह्रोल्फ दी गेंजर (Hrolf the Ganger) *के नेतृत्व में उत्तरी फ्रान्स पर उसी प्रकार टूट पड़े थे जिस प्रकार उनके पूर्वज हेंगेस्ट एवं होरसा बर्तानिया पर टूट पड़े थे। ह्रोल्फ ने सेन* (Seine) *नदी के डेल्टा के दोनों ओर के क्षेत्र को फ्रान्स के राजा चार्ल्स दी सिम्पल से छीन लिया। फ्रान्स के राजा ने नॉरमन नेता ह्रोल्स से एक सन्धि 912 ई. में कर ली। जिसके अनुसार इस समुद्री तट को राजा ने नॉरमनों को सौंप दिया और अपनी पुत्री का विवाह ह्रोल्स से कर दिया। इस तरह से ह्रोल्स पहला डयूक ऑफ नॉरमण्डी बन गया। इनका नाम नॉरमन पड़ने का कारण यह है कि ये लोग नॉरवे और जूटलैण्ड के उत्तरी भाग में रहते थे। विजेता विलियम इस ह्रोल्स से सातवीं पीढ़ी में था।*

14 अक्टूबर 1066 ई. को विलियम प्रथम को इंगलैण्ड का सिंहासन प्राप्त हो गया।

इस विजय के पश्चात् वह लन्दन की ओर बढ़ा और बुद्धिमानों की सभा (Witar) ने उसका स्वागत किया तथा अपनी इच्छा से उसे राजा के रूप में चुन लिया। इस प्रकार सैद्धान्तिक दृष्टि से उसके अधिकार का आधार चुनाव हो गया।

विलियम ने सारी शक्ति अपने पास केन्द्रित करके विद्रोही एवं शत्रुओं को समाप्त कर दिया। उसने चतुराई और दूरदरर्शिता से इंगलैण्ड की सम्पत्ति और आय में वृद्धि की।

विलियम की इंगलैण्ड के प्रति सबसे बड़ी सेवा यह थी कि उसके देश में एक दृढ़ और निश्चित राष्ट्रीय राजतन्त्र स्थापित किया। वह एक योग्य शासक और सफल राजनीतिज्ञ था। वह विदेशी था (भारतीय जाट), परन्तु उसने इंगलैण्ड पर बुद्धिमत्ता के साथ शासन किया और अपनी प्रजा का उपकार किया। वह एक कठोर प्रशासक किन्तु मानवीय गुणों से परिपूर्ण था। उसने देश में शान्ति स्थापित की। राज्यभर में कोई आदमी भय रहित सोना, चांदी अपने साथ रख कर ला ले जा सकता था अर्थात् चोरी डकैती का भय नहीं था। यह कहना सर्वथा उपयुक्त ही है कि ''नॉरमन विजय इंगलैण्ड के इतिहास में एक निर्णायक स्थिति अथवा स्थल चिन्ह है और यह विजय एक गुप्त आशीर्वाद थी।''

सम्राट विलियम की 9 सितम्बर सन् 1087 ई. को अपने घोड़े से गिर कर मृत्यु हो गई थी।

❑❑❑

इस्लाम शासन और जाट शक्ति

इस्लाम धर्म के संस्थापक पैगम्बर मुहम्मद साहब के साथ भी जाट रहते थे। ऐसा वर्णन हदीस के एक लेख में हैं। अब्दुल्लाह बिनमसरूद, सहाबी ने हजरत मुहम्मद साहब के साथ रहते हुए जाटों को देखा था। 'तिरमिजी अबाबुल इम्साल' अरबी ग्रन्थ के आधार पर मौलाना सैयद सुलेमान नदवी साहब ने भी 'अरब और भारत के सम्बन्ध' पर भाषण देते हुए इस बात का वर्णन किया है।

ठाकुर देशराज के इतिहासानुसार मुहम्मद साहब ने अपनी रक्षा के लिए जाटों से सहायता ली थी, क्योंकि प्रारम्भ में अरब लोग उनके अधिक विरूद्ध हो गये थे। मुहम्मद साहब गम्भीर परिस्थितियों को देखते हुए मक्का छोड़कर मदीना चले गये, उस समय पर जाटों ने आपकी रक्षा की थी।

'यह प्रमाणित है कि जाट कई विद्याओं में निपुण एवं दक्ष थे। इमाम बुखारी ने अपनी 'किताबुल अदबुल मुफरद'' नामक पुस्तक में मुहम्मद साहब के समकालीन समय की घटना का वर्णन किया है जिसमें लिखा है कि एक बार मुहम्मद साहब की दूसरी पत्नी श्रीमती आयशा बीमार हो गई। जब किसी भी चिकित्सक से उसका इलाज न हो सका तब मुहम्मद साहब के भतीजों ने एक जाट चिकित्सक को बुलाया जिसने आयशा का इलाज किया।

खलीफा उमर ने रूम के शासक रोमन लोगों से अपने देश अरब की रक्षा के लिए वीर जाटों का सहारा लिया तथा उनको इस उद्देश्य हेतु सीरिया देश के समुद्र तट के नगरों में बसाया ताकि वे रोमन लोगों का सामना दृढ़ता और बहादुरी से करते रहे।

जौहला जाटों का देश जुबलिस्तान कहलाता था जो कि हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिण में था, जिसमें काबुल, गजनी तथा आस-पास के क्षेत्र सम्मिलित थे। इन जाटों ने पेशावर के निकट अपने गोत्र के नाम पर 'जौहला किला' बनवाया था जो कि दिल्ली के लाल किले के समान है। यह किला आज भी इसी नाम से विद्यमान है। जौहला जाट खैबर घाटी पर भारत देश के रक्षक थे, जिन्होंने काबुल की ओर से आने वाले अरब आक्रमणकारियों को कई शताब्दी तक रोके रखा।

अरबी इतिहासकार इस जाट वीर कौम की प्रशंसा में बहुत कुछ लिख चुके हैं। बलोचिस्तान में जाटों का प्रजातन्त्र राज्य था। हिरात नदी के क्षेत्र पर भी (अफगानिस्तान) जाटों का शासन था।

वगदाद के शासक जाटों से भयभीत होकर उनसे मुकाबला करने का साहस नहीं कर सकते थे। 'हिस्ट्री ऑफ पर्शिया' के अनुसार मध्य एशिया में 14वीं शताब्दी में जाटों का साम्राज्य था। इतिहासकारों के अनुसार सन् 1289 ई. में जाट राजा अरघुन सुपुत्र अवांग ने खुरासान क्षेत्र के ईसाइयों को एक प्रस्ताव दिया कि अमू दरिया घाटी में मुसलमानों की नई बढ़ती हुई शक्ति के विरूद्ध संयुक्त रूप से हमला किया जाए। उस राजा अरघुन का उत्तराधिकारी धजन खान सन्

1295 ई. में राजगद्दी पर बैठा। उसने मुसलमान, धर्म स्वीकार कर लिया। यह पहला राजा था जिसने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। इसके बाद तो मध्य एशिया में मुसलमान बनने का सिलसिला ही प्रारम्भ हो गया।

'जाट्स दी ऐन्शेन्ट रूलर्स' के लेखक डा. बी. एस. दहिया के अनुसार भंगु जाटों का राज्य ईरान में रहा है। इन लोगों का स्वराज्य शिष्ट मनुष्यों द्वारा न्याय व धर्मनीति से चलाया जाता था। जब अरबों ने सिन्ध पर आक्रमण किया तब काका सुपुत्र कोतल तथा पौत्र भन्दरगू भंगु, सीबिस्तान (सीस्तान ईरान के पूर्व में) पर शासन कर रहा था।

हिस्ट्री ऑफ दी जाट्स के लेखक डा. प्रो. कालिकारंजन कानूनगो के लेखानुसार जाट ही पहले हिन्दू लोग थे जिनसे अरब लोगों का सम्पर्क हुआ। अरब लोग सब हिन्दुओं को जाट नाम से जानते थे। अरब निवासियों की जाट लोगों से ही भारतीय एवं हिन्दुओं की पहिचान थी।

मुसलमानों के प्रबल आक्रमण से पहले, जब दूर दूर तक फैले हुए हिन्दू उपनिवेशों से वे लोग सिन्ध नदी के पूर्व में लौटकर आने शुरू हो गये तब उन सब से पीछे लौट कर आने वाले जाट लोग थे। जाटों के समूह को अपने देश में इस तरह लौट आने को कुछ अज्ञानी व्यक्तियों द्वारा जाटों को भारतवर्ष में आने वाले असभ्य आक्रमणकारी कहा जबकि वे स्वदेश लौटे थे।

जाट सदा वीर सैनिक रहे और सैनिक सेवा करना ही अधिकतर पसन्द करते हैं, यह स्थिति आज भी है क्योंकि ये निर्भय एवं लडाकू प्रवृति की कौम है। प्रो. डा. कालिकारंजन कानूनगो कहते हैं कि जाट सिन्ध नदी के पार जाकर फारस और मौर्य सम्राटों की सेना में वेतन पर सैनिक हो गये थे।

अरब देश में जाट भारत से जहाज और नौकाओं द्वारा भी जाते रहते थे। सिन्ध देश से कपास, मिर्च, ऊन आदि वस्तुएँ जाट लोग अरब तथा उसके समीप के देशों में पहुँचाया करते थे।

इस्लाम धर्म के अब्बासी खानदान का मध्यपूर्व में शासन सन् 749 ई. से 1256 ई. तक रहा। इस अब्बासी वंश का खलीफा हारून उल रशीद सबसे प्रसिद्ध था जिसकी राजधानी बगदाद थी। उसका बेटा मामूरसीद सन् 796 ई. से 828 ई. तक बगदाद का शासक रहा। उसके शासन काल में मध्य पूर्व से जाटों के शासन तथा शक्ति का अन्त हो गया।

इसका एक उदाहरण गजनी राजधानी पर से लल्ल गठबाला मलिक जाट वंश के शासन को समाप्त कर देने का है। यहाँ पर इस जाट वंश का शासन दूसरी सदी के प्रारम्भ से नवमी सदी के प्रारम्भकाल तक लगभग 700 वर्ष रहा था। इस वंश के अधिकतर जाट गजनी पर मुसलमानों का अधिकार होने से अपने पैतृक देश भारत लौट आये परन्तु वहाँ रहने वालों ने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया।

इसी तरह इस्लामी शासनकाल में मध्यपूर्व तथा मध्यएशिया में जाट मुसलमान धर्म के अनुयायी भी बन गए और अधिकतर समय समय पर भारत लौट आये। विदेशों में जाटों ने मुसलमान धर्म को समयानुसार कई प्रकार से ग्रहण किया लेकिन सबसे बड़ा कारण पैगम्बर मौहम्मद साहब के सम्पर्क में रहना तथा उनके सिद्धान्तों का प्रभाव है।

मुहम्मद साहब ने लोगों से मूर्ति पूजा छोड़ देने को कहा और उनको आदेश दिया कि

केवल एक ही ईश्वर (अल्लाह) पूजा के योग्य हैं। जाट तो आदि सृष्टि से ही एक ही ईश्वर की पूजा करने के सिद्धान्त को मानते आये है। यही कारण है कि इस्लाम के केवल एक ही ईश्वर की पूजा करने के सिद्धांत को जाटों ने सामुहिक रूप से समय समय पर स्वीकारा।

इन अल्प उद्धरणों, उदाहरणों एवं कथनों से स्पष्ट है कि आदि सृष्टि से ही हमारे पूर्वज आर्य पुत्र, क्षत्रिय एवं बहादुर थे तथा सभी विद्याओं में निपुण थे। जिन देशी विदेशी लेखकों एवं इतिहासकारों ने जाटों के विरूद्ध जो मनगढ़न्त एवं असत्य तथा अनर्गल बातें लिखी है वे सर्वथा झूठी एवं न मानने योग्य है।

विदेशी आक्रान्ताओं (मुसलमान एवं अंग्रेजों) के कथन पर भारतीयों के इतिहास और संस्कृति को बिगाड़ने के लिए मनगढ़न्त तथा कपोलकल्पित लेख लिख डाले जो असत्य है। वेद शास्त्रों के आधार पर भारतीय प्रचण्ड विद्वानों ने जो प्रमाणित इतिहास लिखा है उससे सिद्ध है कि आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी है जो यहाँ से दूसरे देशों में या तो धर्म प्रचार के लिए अथवा शासन करने गए आदि सृष्टि से लेकर महाभारत काल तक सम्पूर्ण पृथ्वी पर इनका चक्रवर्ती राज्य रहा।

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने 22 अक्टूबर, 1943 ई. को सिंगापुर आजाद हिन्द रेड़ियों से अपने भाषण में कहा था कि ''Let us create history Let some body else write it.*''

अर्थात्

''आओ हम तो इतिहास का निर्माण करें, इतिहास लिखने का काम दूसरों के लिए छोड़ दें।'' इसी तरह जाटों ने इतिहास का निर्माण किया है, जिनकी वहादुरी, रण कौशलता एवं दरियादिली को विश्व जानता है। इतिहासकारों ने जाटों के साथ भी ठीक वैसा ही क्रूर मजाक किया है जैसा कि जन जन के नेता, नेताजी सुभाषचन्द्रबोस के साथ आधुनिक इतिहासकार कर रहे हैं।

अतः अब वो समय आ गया है कि हम ही इतिहास बनायेंगे और हम ही इतिहास लिखेंगे। वैसे जाटों का देश विदेशों में जहाँ-जहाँ राज्य रहा, वहाँ का अलग-अलग अपना-अपना इतिहास तो इन्होंने लिखा था जो इनके ईर्ष्यालुओं ने मौका मिलते ही नष्ट कर दिया लेकिन एक इकट्ठा ग्रन्थ या इतिहास लिखने की ओर इन्होंने कतई ध्यान नहीं दिया। इनके इतिहास की जानकारी यूनान व अरब इतिहासकारों के लेखों में मिलती है।

जाटों ने देश विदेशों में शत्रु को पराजित करके जहाँ भी अपना राज्य स्थापित किया वहाँ की जनता पर कभी भी अत्याचार दुर्व्यवहार, अन्याय तथा व्यभिचार नहीं किया जैसा कि भारत पर आक्रमण करके मुगलों एवं अंग्रेजों ने किया था। जाटों ने विजित लोगों के साथ सद्व्यवहार और उनकी स्त्रीयों को अपनी बहिन बेटी समझा और उनको उचित सम्मान दिया। ऐसे उच्च चरित्र के जाटों पर भारतीयों को गर्व करना चाहिए। जब जाटों ने रोम (इटली) में अपना साम्राज्य स्थापित किया था, तो इनके कार्य एवं व्यवहारों को देखकर ही तो वहाँ की जनता ने कहा था-''क्या ही अच्छा होता कि अबसे बहुत समय पहले जाट लोग हमारे शासक होते!'' रोमवासियों ने जाट-राज्य को राम-राज्य की संज्ञा दी थी।

❑❑❑

जाटों की चारित्रिक विशेषताएँ

जाट लम्बे डील डौल, सुन्दर गोरे या गेहुए रंग, चौड़ी छाती, लम्बी भुजाएँ, पतली कमर और रौबीली चाल ढाल से अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। जाट का शरीर गठीला और फुर्तीला होता है। जाटों का स्वभाव बड़ा सरल और दयालु होता है। किन्तु अन्याय होने पर मनमानी करता है और प्राणों पर भी खेलकर अन्यायी से भिड़ पड़ता है।

प्रो. डा. कानूनगो के अनुसार जाट शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ और बलवान होता है, उसमें कल्पना एवं भावनाओं का अभाव होता है किन्तु उसमें दृढ़ता यथेष्ट मात्रा में पाई जाती है। उसकी बुद्धि व्यावहारिक एवं आत्मीयता से परिपूर्ण होती है। ठोस तथ्यों के अभाव में केवल शब्दों के द्वारा कोई भी बात उसके गले के नीचे उतारी नहीं जा सकती। जैसा इब्बेसपन ने लिखा है, दृढ़ता, स्वतंत्रता तथा अध्यवसाय एवं कठोर परिश्रम उसके चरित्र के कुछ अच्छे गुण है। जाट चरित्र की एक दूसरी विशिष्टता, जैसा कुछ श्रेष्ठ पर्यवेक्षकों ने अवलोकित किया है, उसका व्यक्तिवाद है।

जाट ऐसा व्यक्ति है,यह वही काम करता है जो उसे उचित लगता है, कभी-कभी वह ऐसे काम करता है जो उसे स्वयं अनुचित लगते हैं। वह स्वतन्त्र है और स्व-इच्छा से प्रेरित होता है किन्तु वह समझदार है और यदि उसके साथ अनावश्यक हस्तक्षेप न किया जाय तो वह शान्तिप्रिय है।

ब्रज के एक पंडित ने जाटों का मूल्यांकन कर मुझे बताया कि जाट का मुंह शेर का होता है और पीठ शक्कर की होती है। जाट को भयभीत करके या आँखे दिखा कर डराया नहीं जा सकता। जाट से प्रेमपूर्वक कोई भी काम निकाला जा सकता है लेकिन उससे शत्रुता करके काम की आशा निरर्थक है। शासन प्रणाली में जाट अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक लोकतांत्रिक है, वंश परम्परा अधिकारों के प्रति उनमें सम्मान की भावना अपेक्षाकृत कम है, वे निर्वाचित नेताओं को ज्यादा महत्व देते हैं। जाटों में गोत्रों की भावना अधिक मजबूत है। अपने गोत्रवंशी को वह अपना सगा भाई जैसा स्नेह एवं सहयोग करता है। जाट आनुवंशिक झगड़े को पवित्र कर्त्तव्य की भांति निवाहते हैं। प्रो. कानूनगो के अनुसार एक वृद्ध जाट तब तक शान्ति से नहीं मर सकता, जब तक कि वह अपने नाती बेटों को यह बताकर अपनी छाती का बोझ हल्का न कर ले कि उसके पड़ौसियों ने उसके और उसके पूर्वजों के साथ क्या बुरा और क्या अच्छा किया है तथा जब तक वह उन्हें 'बुराई का बदला, बुराई से और भलाई का भले कामों से बदला' चुकाने का आदेश न देदे। एक कुनवा दूसरे कुनवे से लड़ सकता है, एक गोत्र से दूसरे गोत्र की लड़ाई हो सकती है, परन्तु जब भी स्वजातीय सम्मान का प्रश्न उठता है, अथवा किसी दूसरी विरादरी के साथ संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है, जाति के वे सभी सदस्य्य जो बालिग है और लाठी पकड़ने की सामर्थ्य

रखते हैं, अपने पारस्परिक मतभेदों को अल्पकाल के लिए भुलाकर, निष्ठा के साथ, स्वजातिय बुजुर्गों के आदेशों का पालन करने के लिए उधत रहते हैं।

जाट, जाति पर आधारित भेदभाव अथवा कुलीनबाद को मान्यता प्रदान नहीं करता। जाति में तो ''मोंठ से मोंठ बड़ी नहीं होती'' का सिद्धान्त है लेकिन अन्य जातियों के साथ जाट सह अस्तित्व के आधार पर रिश्ता कायम रखता है। जाट वाली 'वू' तो इसके मस्तिष्क में रहती है तथा 'दीवार टूट जायेगी, लेकिन टट्टू नहीं हटेगा' अर्थात् हठी प्रकृति के कारण यह बहुत नुकसान उठाता है। यह करता पहले है तथा सोचता बाद में है जो इसका अवगुण है।

जाट प्रत्येक व्यक्ति पर शीघ्र ही विश्वास कर लेता है, कहते हैं इसके रौव दौब से अन्य तो डर जाते हैं लेकिन 'या तो जाट को जाट मारे या मारे करतार' (ईश्वर) वाली कहावत लम्बे समय से चली आ रही है। जाट का अन्य दुश्मन कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, इसका तो सबसे बड़ा शत्रु स्वजातीय भाई ही बन जाता है। जाट विद्रोही स्वभाव तथा स्वतन्त्र विचार का व्यक्ति होता है।

हर काल और देश में सभ्यता की साक्षी रही जाट जाति अपने साफ सुथरे सोच, सहकारिता की भावना और सदा स्वतन्त्र प्रवृति के कारण अपना एक अनूठा गौरवशाली इतिहास रखती है। श्रम को सदा आराध्य माना वही शासन करने का भी एक शानदार अनुभव है। जाटों ने आदमखोर शासकों की बेइन्साफी और गैर बराबरी का सतत् मुँह तोड़ जवाब दिया। इस जाति ने कभी भी वे-ईमान कलम के तथाकथित धनी, सामन्तों की जूठन पर पलने वाला इतिहास लेखकों का मुंह नहीं ताका। जाट जाति का अमिट इतिहास धरती माँ के कण-कण में समाया है। लगातार खेतों के मखमली पन्नों में लिपटा सुलेमान, हिन्दूकुश, हिमालय और अरावली के फ्रेंम में मढ़ा, इस गौरवशाली जाति का इतिहास अनूठा है।

भारत के इतिहास में जाट जाति की भूमिका अद्वितीय रही है, लेकिन दुर्भाग्य से इतिहास लेखन में इसे उजागर नहीं किया जा सका है। संकीर्णता, संकुचिता एवं धर्मान्धिता को नकार देने वाली यदि कोई जाति है, तो वह जाट जाति। वह हिन्दू है, सिक्ख है तथा मुसलमान है। वह अच्छी बातों को ग्रहण करने में झिझक नहीं रखता तथा समय समय पर उसने महापुरूषों का अनुगमन किया है तथा विश्नोई, सिख एवं इस्लाम धर्म में जाटों द्वारा दीक्षित होना इसका प्रमाण है। जाट मेहनती किसान तथा एक लड़ाकू एवं निडर शक्ति के रूप में जीवित रहा है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में देखा जाए तो जाट नि:सन्देह भारतीय ऋग-वैदिक आर्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। मजबूत वर्गीय संगठन, प्रजातन्त्र का समर्थन स्त्री स्वतन्त्रता, तथा विधवा विवाह के जातीय गुणों के आधार पर वे हिन्दुओं की किसी भी जाति की अपेक्षा सच्चे अर्थों में भारतीय आर्यों की सन्तान हैं। प्रो. डा. कालिकारंजन कानूनों जैसे इतिहासकार ने भी अपनी पुस्तक ''History of the Jats'' में लिखा है कि शारीरिक विशेषताओं, भाषा, चरित्र, विचारों, सरकार के आदर्शों और सामाजिक संस्थाओं में वर्तमान काल के जाट असंदिग्ध रूप से हिन्दुओं की तीन उच्च जातियों की अपेक्षा वैदिक आर्यों के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि है।

निश्चय ही जाट जाति वीरता, क्षमता एवं लगन की मशाल रही है। इस अभिनव भारत में इस जाति का गौरवमय पक्ष एक मिशाल है। मुख्यत: कृषक समुदाय के रूप में संगठित इस महान जाति ने राष्ट्रीय मुख्य धारा में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। जाट हमेशा संकीर्ण जातिय दृष्टिकोण से ऊपर रहे हैं।

पं. इन्द्र विधावाचस्पति ने लिखा है कि ''जाटों को प्रेम से वश में करना जितना सरल है, आँखे दिखाकर दबाना उतना ही कठिन है।'' गिड़गिड़ाते हुए शरणागत् शत्रु की दीन वाणी जाट के भयंकर क्रोध को भी क्षणभर में शान्त कर सकती है। डा. विक्टरेटन ने लिखा है कि ''जाटों में चालाकी और धूर्त्तता, योग्यता की अपेक्षा बहुत ही कम होती है, वे स्वामीभक्त और साहसी होते हैं। कालिकारंजन कानूनगो के शब्दों में ''जाट सच्चे भारत पुत्र हैं।'' वे खेती करने और तलवार चलाने में एक बराबर की रूचि रखते हैं। इनके एक हाथ में हल तथा दूसरे हाथ में तलवार रहती है। परिश्रम और साहस में भारत की कोई भी जाति इनकी तुलना नहीं कर सकती। जाट बहादुरी के साथ-साथ ईमानदार भी है। ये मैदान में मरना जानते हैं।

जाट प्रथम श्रेणी का किसान है, जिसने हिन्दुस्तान में ही नहीं अपितु एशिया व यूरोप के लोगों को भी खेती करना सिखाया। इस बारे में आज भी कहावत प्रचलित है कि ''कविता सोहें भाट की, खेती सोहे जाट की।'' जाटों की तलवार का मुकाबला नहीं। जाट मुठ्ठी भर चने खाकर महीनों तक शत्रु से युद्ध कर सकता है।

जाट शत्रुता और मित्रता को पीढ़ियों तक निभाता है। वह भूख, प्यास, कंगाली एवं हर प्रकार की आपत्ति-विपत्ति और मौत तक का सामना बड़े साहस और धैर्य से करता है। वह आपत्ति से घबड़ा कर हाहाकार नहीं मचाता। ईश्वर इच्छा कह कर धैर्य धारण कर लेता है। क्षमा मांगने पर खूनी हत्यारे को भी क्षमा कर देता है। जाट अपनी कमाई पर सन्तोष रखता है।

अन्याय का प्रतिकार करते हुए झगड़ा करना जाट को अधिक अच्छा लगता है। प्रसिद्ध विद्वान इव्वेट्सन के अनुसार प्रबल स्वतन्त्रता और धैर्यशील श्रम उसके अच्छे गुण हैं किन्तु साथ ही वह झगड़ालू है। जाट चरित्र की अन्य विशेषताओं में उसका कठोर व्यक्तिवाद है। वह स्वतन्त्र और हठधर्मी है। भिन्न मत और साम्प्रदाय के बावजूद जाट आखिर एक जाट ही होता है। चाहे वह हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान हो, वह सगोत्रीय परम्परा के साथ अपने जातीय नाम से कट्टरता के साथ चिपका रहता है। प्रतिद्वन्दी के साथ संघर्ष में उसका जातीय गठबन्धन काफी मजबूत रहता है।

''Discovery of India'' के लेखक पूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि मैं उत्तर प्रदेश के उत्तरी तथा पश्चिमी जिलों के प्रबल जाटों के बारे में जानता हूँ। वे मातृभूमि के आदर्श पुत्र, बहादुर, स्वतन्त्र स्वभाव वाले तथा बहुत उन्नतिशील है। भारतवर्ष में जाटों सेबढ़कर कोई दूसरा अधिक शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ किसान नहीं है। वे अपनी भूमि के प्रति समर्पित हैं, इसके सम्बन्ध में किसी प्रकार की दखलन्दाजी सहन नहीं कर सकते।

फील्ड मार्शल के. एम. करियाप्पा ने जाटों को भारत का महान सपूत, प्राचीन तथा मर्दाना जाति कहा है। करियाप्पा कहते हैं कि मेरे सैनिक सेवाकाल के समय बहुत से जाट सैनिकों एवं पलटनों ने मेरे नीचे काम किया है। इनकी कार्यक्षमता, देश-भक्ति, सैनिक निपुणता तथा बहादुरी अद्वितीय रही है। भारत के इन महान सपूतों की इन विशेषताओं को, मैं प्रशन्नतापूर्वक स्मरण रखता हूँ।

जाट अपनी तुरतबुद्धि के लिए भारत की सभी जातियों में श्रेष्ठ माना जाता है। जाट जाति के लिए कहावत है कि ''अनपढ़ जाट पढ़ा जैसा, पढ़ा लिखा जाट खुदा जैसा।''

'महाराजा सूरजमल' के लेखक कुं. नटवरसिंह के लेखानुसार ''जाट जन्म जात श्रमिक एवं योद्धा है। वह कमर में तलवार बांध कर खेत में हल चलाता था। अपने घर वार की रक्षा के लिए वह क्षत्रीय की अपेक्षा कहीं अधिक लड़ाइयाँ लड़ता था, क्योंकि क्षत्रिय के विपरीत, आक्रमणकारियों के आने पर जाट अपने गाँव को छोड़कर शायद ही कभी भागता हो, और यदि हिन्दुस्तान की ओर जाते किसी विजेता की ओर से जाट के साथ दुर्व्यवहार किया जाता या उसकी स्त्रियों से छेड़खानी की जाती, तो उसका बदला वह आक्रमणकारी के काफिलों को लूट कर लेता था। ......उसकी अपनी खास ढंग की देशभक्ति विदेशियों के प्रति शत्रुतापूर्ण और साथ ही अपने उन देशवासियों के प्रति दयापूर्ण, यहां तक कि तिरस्कारपूर्ण थी, जिनका भाग्य बहुत कुछ उसके साहस और धैर्य पर अबलम्वित था।''

जाट का एक विशेष चरित्र यह भी है कि वह किसी की धरोहर, उधार राशि को ठीक से लौटायेगा और भूखा मरने पर भी किसी से भीख नहीं माँगेगा। वह आत्म विश्वासी एवं आत्म गौरवी है। अतिथि सत्कार करना, भूखे को भोजन देना और समय आने पर दिल खोलकर अपनी शक्ति से भी अधिक दान देना आदि जाटों का पैतृक चरित्र है। वह आदतन बड़ों का आदर एवं सम्मान करता है।

प्रो. डा. कानूनगों ने जाट की सहज लोकतन्त्रीय प्रवृति का प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। एतिहासिककाल में जाट समाज उन लोगों के लिए महान शरण-स्थल बना रहा है जो हिन्दुओं के सामाजिक अत्याचार के शिकार होते थे, यह दलित तथा अछूत लोगों को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानपूर्ण स्थिति तक उठाता और शरण आने वाले लोगों को एक सजातीय आर्य ढाँचे में ढालता रहा। शारीरिक लक्षणों, भाषा, चरित्र, भावनाओं, शासन तथा सामाजिक संस्था विषयक विचारों की एक सजातीय आर्य ढाँचे में ढालता रहा।

सुलतान महमूद गजनबी, तैमूरलंग, नादिरशाह या अहमदशाह अब्दाली आदि के साथ जाटों के युद्धों की ओर दृष्टि डालने पर हर एक से और हर जमाने में उनके जातीय चरित्र का पता चलता है। बड़े से बड़े विजेता की दिल दहला देने वाली प्रशंसा सुनकर भी, उससे न डरना और बाद में हो जाने वाली हानि का ध्यान न करके, मैदान छोड़ कर भागते हुए शत्रु को खदेड़ते चले जाना, युद्ध में शत्रु से भिड़ जाने पर पूर्ण धैर्य धारण करना और अद्वितीय गम्भीर साहस का परिचयदेना, युद्ध क्षेत्र में तथा हार जाने पर आने वाली विपत्तियों का तनिक भी ध्यान न करना

और अपने शत्रु की निर्दय तलवार के सिखाये हुए सबकों को बहुत जल्दी भूल जाना आदि जाटों के चरित्र के मुख्य अंग है।

ठाकुर देशराज के अनुसार जाट जाति के किसान गर्व से प्रथम भगवान का नाम लेकर धरती को नमन करते हैं। जाट वीरों के लिए मातृभूमि की पूजा से बढ़कर किसी अन्य की पूजा रूचिकर नहीं लगती। जाटों के पूर्वज भगवान श्री कृष्ण ने शक्तिशाली इन्द्रदेव की पूजा छुड़ाकर गिरिराज पर्वज की पूजा कराई थी अर्थात् जाटों ने कभी शक्तिशालियों के सामने समर्पण नहीं किया।

मुगलों का समय रहा हो या अंग्रेजों का, देशभक्ति और कुरवानी में जाट कौम हमेशा अग्रणी रही है। धार्मिक सहिष्णुता, भाईचारा व प्रजातन्त्र में अटूट आस्था रखने वाली जाट कौम अन्याय को बरदाश्त नहीं कर सकती।

कुं. नटवर सिंह लिखते हैं कि जाट अपने साथ कुछ एक संस्थाऐं लेकर आये, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है पंचायत – पांच श्रेष्ठ व्यक्तियों की ग्राम सभा, जो न्यायाधीशों और ज्ञानी पुरूषों के रूप में कार्य करते थे।

श्री कृष्ण से लगाकर आज तक, जाट कभी भी राज सिंहासन के लोभी नहीं रहे। अपना कर्तव्य पूरा करने के बाद बड़े सन्तोष के साथ हल जोत लेते हैं। इनकी गणतन्त्रीय पंचायती व्यवस्था इतनी शक्तिशाली रही है कि बड़े से बड़े शासक के कान, बड़े विनम्र भाव से इनकी ओर लगे रहे हैं। चन्द दिनों के लिए आने वाला दुर्दान्त विदेशी लुटेरा और रक्त पिपासु महमूद गजनवी व सिकन्दर भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सका था।

जाट एक ईश्वर की उपासना पर विश्वास रखता है। वह पोपलीला और ढोंग से दूर रहता है। वह देवी–देवताओं, भूत–प्रेत आदि के चक्कर में नहीं पड़ते और पौराणिक धर्म के पाखण्डों को – जिसमें मूर्ति पूजा, पशुओं की बलि, ईश्वर और प्रकृति के नियमों के विरूद्ध बातें, अन्ध विश्वास आदि को नहीं मानते।

दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले मुस्लिम शासकों की निन्द्रा जाटों के कारण ही लुप्त होती थी। इन वीर जाट क्षत्रियों की एक विशेषता और थी कि कुछ क्षत्रियों ने तो विधर्मी शासकों को अपनी कन्यायें देदे थी किन्तु जाटों ने ऐसा कभी नहीं किया।

जाट अत्याचारी एवं अन्यायी के विरूद्ध अपनी तलवार उठाता है, दूसरों पर अत्याचार व अन्याय नहीं करता। अपने साथ रहने वाली अन्य जातियों के लोगों तथा महिलाओं के साथ अपने भाई–बहिन के समान व्यवहार करता है।

जाट अपनी स्त्रीयों का सम्मान करते हैं और उन्हें घर की लक्ष्मी समझते हैं। खेती–बाड़ी, ब्याह शादी तथा प्रत्येक घरेलू कार्य में उनकी राय ली जाती है तथा वह घर की पूर्ण मालिक होती है। जाट स्त्रियाँ अपने पति को पूरा सहयोग करती है, खेती तथा गृह कार्यों में सहयोगी के रूप में वह लगी रहती है। किसी से लड़ाई झगड़े में भी जाट औरत अपने पति के

साथ रहेगी और वह पति सेवा अपना धर्म समझती है। माता–पिता, सास–ससुर, जेठ–जेठानी की सेवा करना अपना सौभाग्य समझती है।

जाट–समाज में पुत्र–पुत्री का समान अधिकार है। दोनों का पालन–पोषण, पढ़ाई–लिखाई तथा खान–पान में समान व्यवहार किया जाता है। जाटों का भोजन पूर्ण शाकाहारी है, घी, दूध, दही, दलिया, महेरी, रावड़ी और अपने खेत का अन्न, सब्जी इनका रोचक एवं प्रिय भोजन है। प्राचीनकाल से जाट नशीले पदार्थो से अलग रहा है। हुक्का अवश्य जाटों में प्रचलित है जो उनके पारस्परिक सहयोग, प्रेम एवं भाई चारे का प्रतीक है।

जाट दु:ख का मित्र और शर्म का साथी होता है। जातीय संगठन और राष्ट्रीयता में इनसे बढ़कर और नहीं हो सकता। वह स्वभाव से अन्याय बरदाश्त नहीं कर सकता। वह टूट जायेगा लेकिन झुकेगा नहीं। वह स्वभाव में दृढ़, कठोर, सुस्त एवं व्यावहारिक होता है।

यह जाति देश की निधि है। वह देश का पेट भी भरती है और रक्षा भी करती है। देश तथा अपनी रक्षा के प्रति वह सदैव सजग है। जिस कुशलता से वह खेत में हल चला सकती है उसी सफलता से युद्ध भूमि में वह तलवार भी चलाना जानती है। हिम्मत और हौंसला, परिश्रम और दृढ़ता में इस जेसा दूसरा नहीं है।

जाटों में कभी परदा प्रथा नहीं रही है लेकिन वाद में कुछ लोगों के यहाँ यह रिवाज था जो न्यून है। विधवा विवाह जाटों में पूर्व में भी होते थे और आज भी होते हैं, जो इनकी प्रगतिशीलता का प्रतीक है। कन्या वध, नर व पशु बलि के ये सदैव विरोधी रहे हैं।

मातृशक्ति का सच्चे अर्थो में यदि किसी क्षत्रीय जाति ने सम्मान करना सीखा है तो वे वीर जाट ही है। इस जाति में स्त्री जीवन से अठखेलियाँ खेलकर उन्हें पश्चाताप के आंसू पीने के लिए नहीं छोड़ दिया जाता है। अकाल वैधव्य दु:ख की असहाय ज्वालाओं में हठात् जलने के लिए विवश नहीं किया जाता। इस जाति की स्त्रीयाँ अपनी इज्जत को पल्लू में संजोये पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर काम करती रही है।

यवन, फिरंगी जाटों के बारे में कहते थे कि 'जाट मरा तब जानिए, जब तेरहवीं हो जाए।' अर्थात् जाट को मारना कोई आसान नहीं है। जाट एक दूसरे को सम्मान भी अन्य जातियों से अधिक करता है। गांवो में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि 'जाट का हुक्का तू पी तू पी में ही ठण्डा हो जाता है।' बड़ों का सम्मान उस की स्वाभाविक प्रवृति है। 'जाट कही सो कहीं' की कहावत तो जग प्रसिद्ध है। जाट अगर गलत काम पर भी अड़ गया तो उसे उसकी हठ से हटाना आसान नहीं है। 'पढ़ा लिखा जाट, सोलह दूनी आठ।' कह दिया जो कह दिया। मरना मन्जूर परन्तु हटना मन्जूर नहीं। यद्यपि जाट गलत कार्य करने का आदि नहीं है।

जाटों की वीरता के बारे में जितना अधिक लिखा जाए कम है। अंग्रेजों के साथ भरतपुर के जाटों का युद्ध विश्व में एक विशाल है। संसार प्रसिद्ध जनरल लार्ड लेक का मान भरतपुरिया जाटों ने ही तो धूल में मिलाया था। 'आठ फिरंगी नौ गौरा, लड़े जाट के दो छोरा।' की गूंज आज भी भरतपुर के दुर्ग की प्राचीरों से गूंज रही है।

जिस प्रकार राष्ट्रीय चरित्र में गिरावट आई है उसी प्रकार जाटों के चरित्र में भी गिरावट के लक्षण नजर आने लगे हैं। स्वार्थपन और धूर्त्तता में जाट अब अपने को किसी से भी कम नहीं रहने देना चाहता है। अकारण संघर्ष में व्यक्तिवादिता एवं अहंकार में लिप्त जाट अपना पराया, भला बुरे की पहचान खो देता है। महत्वाकांक्षा के वशीभूत तथा स्वार्थ में वह अपने स्वजातीय भाई के गले काटने में भी संकोच नहीं करता है। 'पीताम्बर फाट्यो भलौ साज्यौ भलो न टाट और कौम मिन्तर भली, दुशमन भल्यौ न जाट।' यह कहावत इनके शत्रुओं ने शायद इसीलिए कही है। यद्यपि मैं इससे सहमत नहीं हूँ फिर भी न जाने अन्य कौम जाटों से क्यों नफरत करती है इसका उत्तर हमें खोजने की आज के संदर्भ में अधिक आवश्यकता है।

उपेन्द्र नाथ शर्मा अपनी इतिहास-पुस्तक में लिखते है कि प्रायः देखा गया है कि जाटों के मुकाबले में राजपूत विलास प्रिय, भू-स्वामी, गूजर और मीणा सुस्त अथवा गरीब काश्तकार, झगड़ालू तथा पशुपालन के स्वाभाविक शौकीन है। जबकि जाट मेहनती, जमींदार और पशुपालक है। वह वेद की आज्ञा 'कुवैन्नैवेह कर्माणि जिजिविषच्छंत समाः' का अक्षरशः पालन करता है। वह अपना कमाया हुआ अन्न ही खाना पसन्द करता है। इसने पिछड़ी अथवा निम्न कही जाने वाली जातीयों के लोगों के साथ कन्धे से कन्धा ही नहीं बल्कि पसीने से पसीना मिलाकर खेतों में काम किया है। दूसरे के लिए सत्य की रक्षा में दो भाईयों अथवा दो परिवारों को आमने सामने भिड़ते देखा है, दूसरे के दुःख दर्द को समझा है। समाज को सदा जोड़ने का प्रयास किया है। संकट के समय में, समाज व देश रक्षा के लिए बलिदान देने को तत्पर रहा है। इसने कभी ऊँच नीच के भाव से प्रेरित होकर किसी निम्न अथवा पिछड़ी जाति को अपमानित नहीं किया। फिर भी जाटों पर जातिवाद का झूठा आरोप लगाया जाना उसके साथ घोर अन्याय ही माना जायेगा।

❑❑❑

संसार में जाट शब्द के पर्याय

यह तो पूर्व में ही लिखा जा चुका है कि यूरोप, एशिया, चीन आदि विश्व के अनेक देशों में 'जाट' लोग भारत में गये थे और वहाँ पर भाषा भेद के कारण उनको भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया। अलग-अलग देशों में जाटों को जिन-जिन नामों से पुकारा जाता है, उसका वर्णन निम्न प्रकार है :-

रिसाला जिहाद के लेखक और आर्य समाज के विद्वान पं० लेखराम ने यदु से यादव, यादव के जादव (जादू) फिर जात और जात से जाट होना सिद्ध किया है ओर 'ज्ञात' से हिन्दी 'जात' होने के नियम से साधारण लोग भी जानकार है। वैसे भी 'ज्ञ' अक्षर ज् +ञ का संयोजन है। जाट के अलग-अलग नाम ज्ञात और जात से ही बने हैं। रोमन लिपि में ज्ञात शब्द को गेटा (Giota) अथवा गेटे (Giote) अक्षरों के लिखा जाता है। जो पढ़ने में गेटा, जेटा, गियाट (गात), जिओटी और जिआती सहज ही हो सकता है। उच्चारण भेद से वे सब शब्द इसी Giote के पढ़े जा सकते हैं जो कि देशी विदेशी इतिहासों में पाये जाते हैं। भारत में जाट शब्द को लोग जट, जट्ट और जाट नाम से बोलते हैं। वैसे ही इस शब्द को अरबी लोगों ने जत, चीनी लोगों ने यूती-यूची, यूरोपियन लोग जिनका कैस्पियन और जगजाटिस नदियों के किनारों से जाने वाले जाटों से सम्पर्क हुआ था उन्हें ज्ञात, जात अथवा जाट की अपेक्षा उच्चारण भेद से जेटा, गेटा और गाथ आदि नामों से पुकारते हैं।

चीनियों ने श्यूची, यूहची अथवा यूती नाम से पुकारा है। श्यूची शब्द भारतीय जाटों की शिवि-शाखा के कारण प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इनका समूह मानसरोवर और कश्मीर के पार काफी दूर तक पहुँच गया था। जाट इतिहासकार ठा० देशराज एवं कप्तान दलीपसिंह अहलावत के अनुसार विभिन्न देशों में जाटों को निम्न प्रकार पुकारा जाता है:-

उच्चारण हिन्दी	**अंग्रेजी**	**देश**
1. जाट, जट, जट्ट	Jat, Jat, Jatt	भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान
2. जाट, जिट, जुट, जट	Jats, Jits, Juts, Jat	ईरान एवं रूस
3. जट्ट	Jatts	मिश्र और तुर्की
4. जोत, जोद, जत	Jotts, Zotts, Jat	अरबदेश
5. जट्टे, जट्टेह	Jattehs, Jetteh	मंगोलों में (मंगोलिया)
6. गोट, गोथ	Got, Goths	स्वीडन, गाटलैन्ड (बाल्टिक सागर)
7. गॉथ, गेटे, गेटी, जेटी, जेटा	Gots, Goths, Gotas	जर्मनी, यूरोप
8. जूटी	Guti	सुमेरयंज (Sumerians)
9. गेटा, जेटा, गिट, गाथ	Getae, Gatae	यूनान, लेटिन (Latin) थ्रेश मध्य एशिया

10.	गाथ, गात, गोथ	Gooths, Goth	रोम (इटली) गाटलैन्ड (स्वीडन)
11.	जट्टी	Jatti	(Pliny and Ptolemy) पलिनी और फ्टोलेमी
12.	ज्याती	Djati	Pharaohs of Egypt
13.	यूची, यूति, जुट्टी	Yueche (Gut-ti) Yetha, Yeta	चीन
14.	जुट, जूट	Jutes	जटलैन्ड, डेन्मार्क
15.	गुट, गेट, जिट	Gut, Get, Jit	कई अन्य देशों में

कुछ लोगों का यह भ्रम है कि शब्द Jats, Getae, Goths एक दूसरे से भिन्न है और एक नहीं हो सकते। इनके एक होने के उदाहरण इस प्रकार है:-

चीनी और कुछ यूरोपियन्स की भाषा में पहले अक्षर (J) के स्थान पर अक्षर जी (G) का प्रयोग होता है। यह ''Grimm's law of Variation'' (गरिमज के परिवर्तन के सिद्धान्त) के अनुसार है। इसी सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत का अक्षर 'स' (S) फारसी में ह (H) और जर्मनी का अक्षर F (एफ) लैटिन में P (पी) बन जाते हैं। इसी तरह से संस्कृत भाषा का शब्द हंस (Hans) का अक्षर H (ह) जर्मनी भाषा में G (जी) बन जाता है, जैसे (Gans or Goose) दोनों का अर्थ हंस ही है। स्पष्ट है कि इसी सिद्धान्त के अनुसार जाटों को चीनियों ने Yue-che, Gut-ti (जुट-टी) यूनानियों ने Getae (जेटा) और जर्मनों ने Got/Goth (जेटा-जेटी) कहा है, किन्तु डेन्मार्क के डेन लोगों ने जाटों को जुट (Jute) ही कहा और अपने देश को जटलैण्ड (Jutland) कहते हैं, क्योंकि यह देश जाटों ने ही आबाद किया था। इसी तरह से यूरोप के शब्द George और Georgia का उच्चारण, अक्षर G (जी) से नहीं परन्तु अक्षर J (जे) से किया जाता है।

जट से जाट

जिस समय भाषा क्षेत्र में अन्धकार छा गया था, उस समय युधिष्ठर से लगभग 800 वर्ष पश्चात् अर्थात् आज से लगभग साढ़े चार हजार वर्ष पूर्व सिन्ध के अधीन प्रान्त गान्धार से व्याकरण सूर्य महर्षि पाणिनि का जन्म हुआ। उन्होंने अपने समय तक की संस्कृत भाषा के सम्पूर्ण शब्दों की व्युत्पत्ति एवं अर्थ बोधक एक व्याकरण की रचना की जिसका नाम ''अष्टाध्यायी'' है। यह देखने में एक छोटी सी पुस्तक है, परन्तु आपकी रचना शैली इतनी विचित्र है कि इसका श्री महर्षि पतन्जली ने भाष्य किया है जो एक पूरा ग्रन्थ हो गया। इसीलिए उसका नाम महाभाष्य रखा गया। पाणिनी ने अपने समय के प्रचलित शब्दों और प्राय: प्रत्येक राजनैतिक संघों का अनेक स्थलों पर वर्णन किया है। इसी कारण विद्वानों का मत है कि ''पाणिनी धार्मिक की अपेक्षा राजनैतिक बुद्धि का ऋषि था।'' तदनुसार अष्टाध्यायी के भ्वादिगण में परस्मैपदी धातु लिखी गई - ''जट, झट संघाते'' अर्थात् जट शब्द समूह के लिए प्रयुक्त होता है। इस धातु से ''जट'' शब्द का अर्थ है कि ''जिसके द्वारा या जिसमें बिखरी हुई

शक्तियाँ एकत्र हो जायें।'' जट का ही दूसरा रूप जाट है और यह दोनों शब्द एकार्थवाची है अर्थात् जिसके द्वारा बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित हो जाये अथवा जिसमें बिखरी हुई शक्तियाँ एकत्रित हो जावे, ऐसे संघ व जाति और प्रत्येक व्यक्ति को 'जट' या 'जाट' कहते हैं। जट शब्द से जाट इस प्रकार बन जाता है :- अष्टाध्यायी के अध्याय 3, पाद 3, सूत्र 19 अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् से जट धातु से संज्ञा घंज प्रत्यय होता है। जट + ... प्रत्यय के घ और ... की इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है। 'अ' से रह जाता है अर्थात् जट् + ... ऐसा रूप होता है। फिर पाणिनी याष्टकम् के अध्याय 7, पाद 2, सूत्र 116 अतः उपधयाः से उपधा अर्थात् जट में के 'ज' अक्षर के 'अ' के स्थान पर वृद्धि अर्थात् दीर्घ हो जाता है। जाट + अ त्र जाट ऐसा शब्द बन जाता है।

यह अन्तिम रूप से सिद्ध हो चुका है कि स्वयं 'जट' शब्द अत्यन्त प्राचीन एवं शुद्ध है। यदि ऊपर कहे हुए शब्दों का अपभ्रंश होता तो उन शब्दों की भांति इसका अर्थ भी सीमित होता और 'जट' शब्द की व्यापक अर्थ शक्ति प्रायः नष्ट हो जाती। इसलिये 'जट' शब्द को किसी भी अन्य शब्द की परम्परा में अपने कई पूर्व रूप नहीं देखने पड़े। यही कारण है कि जट शब्द के प्राचीन अर्थ का महत्व आज भी अक्षुण्ण है।

जाट शब्द को प्राकृत भाषा से मिलती जुलती सिन्धी और पंजाबी आदि भाषाओं में 'जट' ही लिखा और बोला जाता है। परन्तु हिन्दी भाषी राज्यों में जैसे राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में 'जाट' बोला जाता है। कुछेक ऐसे शब्दों के उदाहरण जो भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखे व बोले जात हैं परन्तु उनका अर्थ एक ही निम्न प्रकार से है :-

संस्कृत भाषा	**प्राकृत भाषा**	**हिन्दी भाषा**
1. कर्णः	कुन्न	कान
2. हस्तः	हत्य	हाथ
3. अस्थि	हड्ड	हाड़
4. दन्तः	दन्त	दाँत

इसी सिद्धान्त से संसार की सबसे आदि भाषा 'संस्कृत' से ही समस्त दूसरी भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। 'जट' शब्द का दूसरे देशों में परिवर्तन कैसे हुआ, इसका उदाहरण, संसार की चार प्रसिद्ध भाषाओं के कुछ शब्दों से दिया जाता है।

संस्कृत	**अंग्रेजी**	**फारसी**	**हिन्दी**
1. ओउम्	आमीन (Amin)	अल्म	परमेश्वर, ईश्वर
2. अस्ति	इज (Is)	अस्त	है
3. नाम	नेम (Name)	नाम	नाम
4. तारकम्	स्टार (Star)	सतारा	तारा
5. दुहित्	डॉटर (Daughter)	दुखतर	पुत्री
6. मातृ	मदर (Mother)	मादर	माता

इसी तरह संस्कृत का जट शब्द प्राकृत में जत्थ या जट्ट अरबी, फारसी में जात, चीन में यूति-यूची, यूरोप में जेटी-जेटा, रोम में गात-गाथ, लेटिन में गिटी (Giate) और हिन्दी में जाट नाम प्रसिद्ध हुआ।

ययात और याट शब्द 'जाट' शब्द बन जाना बिल्कुल साधारण है। प्राचीन काल में जिन शब्दों का उच्चारण 'य' से होता था आधुनिक समय में 'ज' से होता है। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है :-

प्राचीन शब्द	**वर्तमान शब्द**		**प्राचीन शब्द**	**वर्तमान शब्द**
1. यश	जस	6.	यम	जम
3. यज्ञ	जज्ञ	7.	यटी	जटी
4. यमुना	जमुना	8.	याट	जाट
5. यौवन	जोवन	10.	यमदूत	जमदूत

❑❑❑

ईसा से पूर्व जाट और उनकी स्थिति

अरब देश के प्राचीन भूगोलवेत्ता तथा इतिहासकारों की पुस्तकों से ज्ञात होता है कि जाट लोग पर्याप्त संख्या में परसिया के समीपवर्ती क्षेत्रों, किरमान और मनसूरा के मध्य आबाद थे। यह पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि ये लोग विदेशों में धर्म प्रचार हेतु गये, वहाँ की भूमि को विकासवादी उत्पादन के योग बनाया और शासन किया। हर काल और परिस्थिति में अपनी बहादुरी और पराक्रम से जाटों ने इतिहास क्रम को बनाये रखा है। ईसा से पूर्व और वाद के उनके वीरत्वपूर्ण कार्यो को संक्षिप्तता के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

सम्राट पुरू-पोरस एवं सिकन्दर महान की पराजय

राजा पोरस जाट जाति का था जो पुरू-पौरव गोत्रीय था। इस चन्द्रवंशी पुरूवंश में अनेक महान शक्तिशाली सम्राट हुए जैसे वीरभद्र, दुश्यन्त, चक्रवर्ती भरत जिसके नाम पर आर्यावर्त देश का नाम भारतवर्ष हुआ, 'हस्ती' जिसने हस्तिनापुर नगर बसाया, 'कुरू' जिसने धर्म-क्षेत्र कुरूक्षेत्र स्थापित किया, शान्तनु, भीष्म, कौरव, पाण्डव आदि। इसी पुरूवंश की राजधानी हरिद्वार, हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ तथा देहली रही।

इसी वंश में 326 ई० पूर्व जाट राजा पोरस अत्यधिक प्रसिद्ध सम्राट हुआ। इनका राज्य जेहलम और चिनाव नदियों के बीच के क्षेत्र पर था। उस समय भारत व वर्तमान अरब देशों में अनेक छोटे-छोटे राज्य एवं राजा थे। सम्राट पोरस उन सभी शासकों में सबसे अधिक शक्तिशाली शासक था। उसके अधीन लगभग 600 राजा थे, यूनान के प्रसिद्ध इतिहासकार स्ट्रेबो के लेखानुसार ''पोरस ने अपने राजदूत कई वर्ष ईस्वी पूर्व रोम (इटली) के राजा अगस्तटस (Augustus) के पास भेजा था।''

यूनान के शक्तिशाली सम्राट सिकन्दर ने 326 ई० पूर्व भारतवर्ष पर आक्रमण किया। सिकन्दर की सेना ने रात्रि में जेहलम (झेलम) नदी पार कर ली। सिकंदर की सेना में यूनानी सैनिकों के साथ कई हजार जाट सैनिक भी थे। पोरस की जाट सेना ने सिकन्दर की सेना के छक्के छुड़ा दिये। इस युद्ध में किसी भी पक्ष की विजय नहीं हुई। सिकन्दर जाटों से मुकाबला करते थक गया। उसने विचार किया कि इस बहादुर राजा से मुकाबला करने में बुद्धिमता नहीं है क्योंकि सरलता से विजय सम्भव नहीं। उसने पोरस को सन्धि हेतु अपने कैम्प में आमान्त्रित करने हेतु दूत भेजा। पोरस निर्भय होकर सिकन्दर के कैम्प में गया और दोनों में सम्मानजनक सन्धि हो गई। सिकन्दर भी अत्यन्त वीर एवं उच्चाकाँक्षी था लेकिन साढ़े छः फीट कद के पौरस जैसा कर्मठ एवं शूरवीर नहीं था। सिकन्दर उसके इन गुणों से परिचित था, उसी से प्रेरित होकर उसने भिम्बर व राजौरी (कश्मीर) पोरस को देकर अपनी मैत्री स्थिर कर ली। पोरस का अपना राज्य स्वाधीन था और रहा। कुछ लोग इस

युद्ध में पोरस की पराजय बताते हैं जिसका अनेक विद्वानों ने खण्डन किया है कि इस युद्ध में किसी की पराजय नहीं हुई।

सिकन्दर चिनाव नदी पार करके छोटे पुरू के राज्य में पहुँचा जो पोरस का सम्बन्धी था। इसके राज्य पर विजय करके सिकन्दर ने पोरस को दे दिया। रावी व व्यास के निचले इलाके पर कठ गोत्र के जाटों का स्वामित्व था। इनका सिकन्दर से संग्राम हुआ। इन जाटों ने सिकन्दर की सेना को मुंह तोड़ जबाव दिया और आगे बढ़ने से रोक दिया। सिकन्दर ने पोरस से पांच हजार सैनिक सहायता को मंगवाये तब बड़ी कठिनाई से व्यास नदी तक पहुँचा। इससे आगे सिकन्दर के सैनिकों ने हथियार डाल दिये। इसका प्रमुख कारण यह था कि वहाँ योधेय गणराज्य था जो कि जाट ही थे। सहारनपुर से लेकर पश्चिम में बहाबलपुर तक और उत्तर पश्चिम में लुधियाना से लेकर दक्षिण पूर्व में दिल्ली आगरा तक इनका राज्य फैला हुआ था। इनकी रण-कौशलता और बहादुरी को सुनकर ही सिकन्दर के सैनिकों का साहस पस्त हो गया और उन्होंने आगे बढ़ने से साफ इन्कार कर दिया। ऐसी हालात में सिकन्दर को व्यास नदी से ही वापिस लौटना पड़ा। वापिसी में सिकन्दर की सेना का मद्र, मालव, क्षद्रक और शिवि गोत्र के जाटों ने बड़ी वीरता और साहस से मुकाबला किया और सिकन्दर को घायल कर दिया। 323 ई० पूर्व में सिकन्दर विलोचिस्तान से होता हुआ बैबीलोन पहुँचा, जहाँ पर तैतीस वर्ष की आयु में उसका देहान्त हो गया।

मौर्य वंश का शासन

मौर्य या मौर चन्द्रवंशी जाटों का शासन महाभारत काल में हरियाणा में रोहतक तथा इसके चारों ओर के क्षेत्र पर था, जिसकी राजधानी रोहतक नगर थी। जब इस वंश का महाभारत काल में राज्य था तो इसमें किंचित सन्देह नहीं कि इस वंश की उत्पत्ति इससे बहुत पहले की है। इस वंश का शासन 322 ई० पूर्व से 185 ई० पूर्व तक रहा है जिसका संक्षिप्त वर्णन लिखा जा रहा है।

मौर्य वंश में सबसे शक्तिशाली सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य था जिसका शासनकाल 322-298 ई० पूर्व तक था। इसने तक्षशिला विश्वविद्यालय की दीक्षा प्राप्त करके महान विद्वान चाणक्य के नेतृत्व में पहले पंजाब पर अधिकार किया तत्पश्चात् नन्दराज्य को समाप्त कर मगध पर अधिकार कर लिया। उसने पाटिलपुत्र अपनी राजधानी बनाई। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका यूनानी सेनापति सैल्यूकस अफगानिस्तान, बाबल, वाख्तरया का शासक बन गया। वह पंजाब पर पुन: यूनानी अधिकार प्राप्त करने के लिए 305 ई० पूर्व सिन्धु नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य से उसका भीषण संग्राम हुआ जिसमें सैल्यूकस बुरी तरह पराजित हुआ। पराजित सैल्यूकस ने मौर्य से सन्धि कर ली, जिसके अनुसार उसने उत्तर-पश्चिम में काबुल, हिरात, कन्धार और विलोचिस्तान चन्द्रगुप्त को दिए और अपनी प्रिय पुत्री हैलन का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य से करके स्थायी मित्रता की। यूनानी लेखक प्लूटार्क के कथनानुसार ''चन्द्रगुप्त मौर्य ने 6 लाख सैनिकों के साथ समस्त भारत पर विजय प्राप्त करके उसे अपने अधीन किया।''

मौर्य का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर तक, पूर्व में बंगाल से लेकर उत्तर-पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वत तक तथा पश्चिम में अरब सागर तक फैला हुआ था। इसमें काबुल, हिरात, कन्धार, विलोचिस्तान, कश्मीर, सौराष्ट्र, मालवा तथा मैसूर तक के प्रदेश शामिल थे। इस अति विशाल एवं सम्पन्न, समृद्ध साम्राज्य की राजधानी पाटिलपुत्र थी। इस सम्राट की मृत्यु 298 ईस्वी पूर्व में हो गई।

चन्द्रगुप्त मौर्य की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र विन्दुसार 298 ई.पू. में राजसिंहासन पर बैठा। यह सम्राट कोई प्रमुख एतिहासिक कार्य न कर सका और 273 ई.पू. में इस असार संसार को छोड़ कर चला गया।

शान्ति के अग्रदूत अशोक-महान्

बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अशोक ने अपने पूर्वजों के साम्राज्य के अतिरिक्त केवल कलिंग राज्य पर विजय प्राप्त की। युद्ध की भयावहता एवं खून-खराबे ने उसके हृदय में युद्धों के प्रति घृणा भाव उत्पन्न कर दिया क्योंकि इस युद्ध में लाखों सैनिक मारे गये एवं हजारों लाखों सैनिक बुरी तरह घायल हुए। अशोक का ह्दय युद्ध के भीषण रक्तपात से द्रवीभूत हो उठा और उसने भविष्य में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की और बौद्धधर्म का अनुयायी बन गया। अशोक ने इस धर्म को भारत तथा समस्त एशिया में प्रचारित किया और अहिंसा परमो-धर्मः का दृढ़ता से पालन किया। इसी कारण इस अति दयालु, वीर एवं साहसी सम्राट को अशोक महान के नाम से संसार जानता है।

सम्राट अशोक ने धर्म के प्रचार के लिए साम्राज्य के विभिन्न भागों में अनेक शिला लेख तथा स्तम्भ बनवाये जिन पर धर्म की प्रेरक शिक्षायें खुदवाई। इनमें अशोक का सारनाथ का स्तम्भ विशेष रूप से प्रशंसनीय एवं विख्यात है। इसमें चार शेरों को उनकी पीठ जोड़ कर खड़ा किया गया है। शेरों के नीचे के पत्थर पर पशुओं के छोटे-छोटे चित्र है और उनके बीच में एक चौबीस पंखुड़ियों वाला चक्र है। उनके नीचे उल्टी घण्टी सी बनी हुई है। समस्त मस्तक पर काले रंग की पालिश की गई है। डाक्टर वी.ए. स्मिथ ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''संसार के किसी भी देश में कला की इस सुन्दर कृति से बढ़कर अथवा इसके समान शिल्प कला का उदाहरण पाना कठिन है।''

अशोक के इसी स्तम्भ को भारतीय संविधान में विशेष महत्व प्रदान करते हुए अशोक चक्र को भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के मध्य भाग में स्थान दिया गया है तथा शेरों की आकृति को राष्ट्रीय चिन्ह माना गया है, जिसे भारतीय मुद्राओं, राष्ट्रपति, राज्यपालों, उच्चतम न्यायालयों आदि के पहचान चिन्ह के रूप में प्रयुक्त किया गया है। भारतीय सेना के अधिकारियों को इन शेरों के चिन्हों को लगाना गौरव एवं वीरता का प्रतीक माना जाता है। सेना में वीरता एवं प्रशंसनीय कार्य करने वालों को जो तमगे (Medals) प्रदान किये जाते हैं, उनमें से एक अशोक चक्र भी है।

अशोक द्वारा जाति का भेदभाव अस्वीकार कर दिये जाने तथा यज्ञों में पशु बलि का निषेध किये जाने से ब्राह्मण वर्ग उनका विरोधी बन गया। अशोक द्वारा अपनाये गये धर्म में ब्राह्मणों के पाखण्ड एवं मनमानी को कोई स्थान नहीं था। ब्राह्मणों की प्रभुता खतरे में पड़ गई थी। अतः वे अशोक एवं उनके धर्म से घृणा करते थे, तथा वे इस बात को भी सहन नहीं कर सकते थे कि उनके स्थान पर धर्म महापात्रों को महत्व दिया जाये। अतः वे अशोक के पतन हेतु षड्यन्त्र करने लगे। लेकिन अशोक के जीवित रहते वे सफल नहीं हुये। अशोक की मृत्यु 232 ई.पू. में हो गई।

हिन्दुस्तान तवारीख के अनुसार – ''ब्राह्मण लोग अशोक के सिद्धान्तों के विरूद्ध थे। इसलिए वह मौर्य साम्राज्य के पतन में लगे हुये थे। इस वंश के अन्तिम सम्राट वृहद्रथ को उसके सेनापति ब्राह्मण पुष्यमित्र ने मार कर स्वयं राज्य ले लिया।'' अशोक के उत्तराधिकारी दुर्बल थे, जो इतने महान सम्राट के इतने बड़े साम्राज्य को सम्भालने में अयोग्य थे। इस तरह से मौर्य-मोर वंशी जाटों का पाटिलपुत्र राजधानी पर 138 वर्ष शासन रह कर समाप्त हो गया। 'भारत का इतिहास' के लेखक अविनाशचन्द्र अरोड़ा लिखते हैं कि शुंग जाति के एक ब्राह्मण नवयुवक पुष्यमित्र ने 184 ई.पू. में मौर्यो के अन्तिम सम्राट वृहद्रथ का वध करके साम्राज्य के केन्द्रीय प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार भारत के प्रथम प्रसिद्ध साम्राज्य का अन्त हुआ।

इतिहास साक्षी है कि देश को जब-जब क्षत्रिय भावना प्रधान वीर योद्धाओं की आवश्यकता हुई तब-तब इस जाट जाति ने अपने देश की रक्षा एवं सेवा में अपने नौनिहालों को बलिदान करने के अमर उदाहरण उपस्थिति किये हैं। जाट वीर आदिकाल से वर्तमान काल तक अपनी वीरता, धीरता और योग्यता के कारण जग प्रसिद्ध हुये तथा इनके वैभव और ऐश्वर्य की गौरव गाथायें आज भी संसार के इतिहास में श्रद्धा और शोभा की चीज समझी जाती है। नीचे की घटनाओं में इस कौम के वास्तविक चरित्र का दिग्दर्शन होता है।

महारानी तोमरिस का सम्राट साईरस से युद्ध

फारस एवं मांडा देश के सम्राट साईरस ने बल्ख तथा कैस्पियन सागर पर शासक जाटों से युद्ध किये, परन्तु वह दोनों युद्धों में असफल रहा। वल्ख पर कांग जाटों का शासन था और मस्सागेटाई पर दहियाजाटों का शासन था। ये दोनों स्वतन्त्र राज्य थे।

मस्सागेटाई जाटों का एक छोटा तथा शक्तिशाली राज्य था जो कि सीथिया देश का ही एक प्रान्त था। इसका प्राचीन नाम उवान था। इस प्रान्त का शासक अरमोघ था जिसकी महारानी तोमरिस थी। राजा अरमोघ की मृत्यु हो जाने पर शासन की बागडोर महारानी तोमरिस ने सम्भाली। साइरस ने उचित अवसर समझ कर अपने दूत द्वारा तोमरिस को उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा, महारानी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उत्तर दिया कि ''मैं जाट क्षत्रियाणी हूं अपना धर्म नहीं छोड़ सकती तथा अपने देश को तुम्हारे आधीन नहीं करूंगी।'' यह

उत्तर मिलने पर साईरस ने 529 ई.पू. में भारी सेना के साथ तोमरिस के राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेनायें अरेक्सिज नदीं पर पहुँच गई जहाँ उन्होंने नावों पर पुल बांधा। यह समाचार मिलने पर तोमरिस ने साईरस को निम्न सन्देश भेजा :-

फारस एवं मांडा देश के प्रधान, इस युद्ध का परिणाम अनिश्चित है। मैं आप को अपना इरादा बदलने की सलाह देती हूं। आप अपने राज्य वैभव से सन्तुष्ट रहिए और मुझे भी अपने शासन को विधिवत् संचालित करने दीजिए, लेकिन आप इस कल्याणकारी एवं शान्ति प्रिय सलाह को मानेंगे नहीं। यदि फिर भी आप युद्ध करने को अत्यधिक अधीर हैं तो पुल बनाने का काम छोड़ दो। हम अपने राज्य में तीन दिन चल कर पीछे हट जाते हैं और आप आराम से नदी पारकरके हमारे देश में आगे बढ़ जाइये यदि आप अपने ही क्षेत्र में हमारे से भिड़ना चाहते हो तो आप पीछे हट जाइये, हम आगे बढ़ आयेंगे।

साईरस ने अपने सभासद क्रेसस की सलाह से मस्सागेटाई राज्य में आगे बढ़ना स्वीकार किया और यह सूचना तोमरिस को भेज दी गई। महारानी ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की तथा वह पीछे हट गई। परन्तु साईरस ने युद्ध विद्या का प्रयोग कुटिलता से किया। साईरस ने शराब तथा अच्छा स्वादिष्ट भोजन एक कैम्प में रखवा दियाऔर वहाँ पर सेना की एक दुर्बल टुकड़ी छोड़दी। शेष शक्तिशाली सेना को नदी की ओर पीछे हटा दिया।

साईरस का लक्ष्य यह था कि मेरी इस दुर्बल सेना टुकड़ी को जाट सैनिक हरा देंगे और शराब व भोजन पर टूट पड़ेंगे, तब उन पर मेरी शक्तिशाली सेना आक्रमण कर देगी। साईरस की यह योजना सफल रही। तोमरिस की जाट सेना ने आक्रमण करके उस दुर्बल सैनिक टुकड़ी को मौत के घाट उतार दिया, उन्होंने वहाँ पर रखी शराब तथा भोजन का सेवन किया और शराब में अचेत होकर सो गये, उस अवस्था में पर्शियन सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया। मस्सागेटाई सैनिक कुछ तो मारे गये और शेष को कैदी बना लिया। इन में तोमरिस का पुत्र स्परगेपिसिज (Spargapises) भी पकड़ा गया, जो कि शराब के नशें में धुत था। जब वह होश में आयातो उसने आत्म हत्या कर ली।

ज्यों ही तोमरिस को अपनी हार की सूचना मिली, उसने साईरस को द्वितीय एतिहासिक संदेश भेजा कि ''साईरस तुम खून बहाने के इच्छुक हो किन्तु अपनी वर्तमान सफलता पर अधिक गर्व न करो। जब तुम स्वयं शराब के नशें में न जाने कितनी मूर्खतायें कर बैठते हो ?इस विष के कारण तुमने मेरे पुत्र को जीत लिया है अपनी चतुराई अथा वीरता से नहीं। मैं पुनः तुम्हें सुझाव दे रही हूँ, आशा है इसमें आप रूचि लोगे। मेरे पुत्र को रिहा कर शीघ्र ही बिना नुकसान पाये मेरे राज्य से चले जाओ। यदि तुम यहाँ से नहीं हटोगे तो मैं मेस्सागेटाइयों के महान देवता सूर्य की सौगन्ध खाती हूँ कि जैसे तुम खून के लालची हो मैं तुमकों तुम्हारा ही खून पिला दूंगी।''

महारानी के इस संदेश का साईरस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निराश होकर महारानी ने अपनी समस्त सेना इकट्ठी की तथा जो युद्ध हुआ वह इतना भयंकर था कि दोनों तरफ से जाट सैनिक अन्तिम दम तक बहादुरी से लड़े। हैरोडोटस लिखता है कि ''प्राचीनकाल से लड़ी गई

सभी लड़ाइयों से यह युद्ध अधिक खून खराबे वाला था।'' तोमरिस की मस्सागेटाई सेना ने 529 ई.पू. के इस युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध में साईरस मारा गया। तोमरिस महारानी ने युद्ध के मैदान से साईरस के मृत शरीर की खोज करवा कर प्राप्त कर लिया और महारानी ने उसका सिर काट कर उस को एक खून से भरे वर्तन में डाल कर कहा – ''मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार तुमअपना ही खून पीओ।''

महारानी तोमरिस इस युद्ध में प्रथम पंक्ति में आकर लड़ी थी। महान जाटों के हाथों अजेय महान सम्राट साईरस की यह प्रथम करारी हार थी। सोग्दियाना के जाटों ने भी ऐसी करारी हार विश्व विजेता सम्राट सिकन्दर को दी थी।

तोमरिस जाट महारानी की धार्मिकता, सहनशीलता, देशभक्ति और वीरता अद्वितीय थी, ऐसे उदाहरण संसार के महिला इतिहास में विरले ही मिलते हैं।

जाटों का मिश्र पर हमला

साईरस के निधन पर उसका पुत्र कैम्बाईसिज फारस के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। साईरस की सेना प्रधान रूप से जाट सेना ही थी जिसके सेनापति भी जाट ही थे। उसने अपनी जाट सेना के साथ 525 ई.पूर्व में मिश्र पर आक्रमण कर दिया। डेल्टा (नील नदी) में जाट सेना का मिश्र की सेना से रक्तपात पूर्ण युद्ध हुआ। हेरोडोटस लिखता है कि इस युद्ध के बाद कैम्बाईसिज की जाट सेना ने मेंमफिस तथा अधिकतम मिश्र को अपने अधिकार में ले लिया। कैम्बाईसिज की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई।

डैरियस जाट जो साईरस का मुक्ष्य सलाहकार हरपेगस जाट का पुत्र था, 521 ई.पू. में कस्बाईसिज का उत्तराधिकारी बना। डेरियस ने मैकदूनिया साम्राज्य को अपने अधिकार में ले लिया। कुछ द्वीपों पर अधिकार करने के पश्चात् 490 ई.पू. में यूनान देश पर आक्रमण कर दिया जो निष्फल रहा। 485 ई. पू. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र क्षेरक्षेज गद्दी पर बैठा। क्षेरक्षेज ने हेलसपोंट जो अब डार्डनर्ल्ज नाम से तुर्की के पश्चिमी तट पर स्थित है, से समुद्री बेड़े द्वारा रूम सागर पार करके यूनान पर दूसरा हमला कर दिया। अल्प युद्ध के पश्चात् फारस की सेना ने ऐथेन्स पर अधिकार कर लिया और 480 ई.पू. में उसे फूंक दिया। फिर भी यूनानी जहाजी बेडें ने पर्शियन बेड़े को पराजित कर दिया तथा बुरी तरह विध्वंश कर डुबो दिया। क्षेरक्षेज हेलेसपोंट के स्थान पर बने नावों के पुल के ध्वस्त होने से डर गया, तथा वह अपनी सेना सहित यूरोपियन संघर्षो से घृणित होकर अपने देश लौट आया। 465 ई. पूर्व में उसको उसके महल में ही मार दिया।

ईसा के पश्चात् जाट-शक्ति

हरिवंश अध्याय 10, श्लोक 28 में लिखा है कि नरिष्यन्त के पुत्रों का ही नाम शक है। इनकी प्रसिद्धि से इनके नाम पर क्षत्रिय आर्यो का संघ शक वंश कहलाया जो कि एक जाट वंश है। सम्राट सगर ने अपने पिता बाहु की हार का बदला शत्रुओं को हराकर इस तरह लिया कि उसने क्षत्रिय आर्य शकों, पारदों, यवनों और पल्हवों को अपने देश से निकाल दिया। शक लोगों ने आर्याव्रत से बाहर जाकर अपने नाम से शक देश आबाद किया जो कि शकावस्था कहलाया, जिसका अपभ्रंश नाम सीथिया पड़ गया। इन शक लोगों का राज्य रामायण महाभारत काल तथा उसके बाद के युग में भी रहा।

शक जाटों का राज्य मध्य एशिया के बड़े क्षेत्रों पर रहा था परन्तु इनकी शक्ति क्षीण होती गई। अन्त में इनका अधिकार बैक्ट्रिया एवं पार्थिया पर ही रह गया। इन लोगों ने वहाँ से भारत की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् पश्चिमी भारत पर अपना राज्य स्थापित किया। भारत में पहला शक सम्राट मोअईज ने लगभग 80 वर्ष ई.पू. में गान्धार को जीता और तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया। शकों ने सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा, उज्जैन, मथुरा और पूर्वी पंजाब आदि प्रदेशों में अपने राज्य की स्थापना की। नासिक का सर्वप्रथम शक राजा भूमक था।

कुशाण साम्राज्य की स्थापना कुशाण राजा कुजुलकफस कर्दाफिसस ने सन् 40 ई. में मध्य एशिया में की। इसी वंश के सम्राट कनिष्क सन् 120 ई. से 162 ई. तक कुशाण साम्राज्य का शासक रहा। इसके बाद इसका पुत्र हुबिष्क 162 ई. से 182 ई. तक शासक रहा। ये कुशाण वंशज जाट थे।

नाग वंश वैदिक कालीन वंश है जो जाट वंश है। रामायणकाल में इस वंश के कई छोटे-छोटे संगठन थें इनके शासन का उल्लेख सन् 150 ई. से 284 ई. तक मिलता है। ये सरल जीवन बिताने वाले तथा कुशल शासक थे।

लिच्छिवि जाट राज्य, धारण गोत्र के जाट शासक (गुप्त साम्राज्य), सम्राट यशोधर्मा, सम्राट हर्षवर्द्धन वसाति या वैस जाट वंशी आदि अनेक जाट शासकों का शासन एवं प्रभुता के साथ रहने का वर्णन 647 ई. तक मिलता है।

सम्राट हर्षवर्द्धन का निधन सन् 647 ई. में हुआ। उसके पश्चात् जाट एवं अन्य जातियों के छोटे-छोटे राज्य भारतवर्ष में स्थापित हो गये। पृथ्वीराज चौहान के समय तक ऐसा कोई भी शक्तिशाली सम्राट नहीं हुआ जो समस्त भारत का शासक रहा हो। जाट, राजपूत, गूजर एवं अहीरों का न्यूनाधिक अलग-अलग प्रान्तों में शासन रहा। इन जातियों के शासकों के पारस्परिक सौहार्द के अभाव में ये आपस में शत्रुता रखते थे और झगड़ते रहते थे। यही कारण था कि विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण हुए। यद्यपि आक्रान्ताओं का समय-समय पर इन वीरों ने मुकाबला बड़ी वीरता से किया।

दाहिर सम्राट और मुहम्मद बिन कासिम–712 ई०

मुसलमान आक्रमणकारियों को जाटवीरों ने भारत की उत्तर–पश्चिम घाटियों पर युद्ध करके शताब्दियों तक भारत की सीमा में प्रवेश नहीं करने दिया। मुसलमानों के साथ पहली टक्कर लेने वाले जाट योद्धा ही थे। यही कारण था कि उस समय के मुस्लिम इतिहासकारों ने सभी भारतीयों को जाट कहा।

सिन्ध के अन्तिम दाहिर सम्राट साहसीराय के विरूद्ध अरबसेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने मिहरान (सिन्ध नदी) तट की ओर कूच किया था। कासिम ने नौका पुल से नदी पार की और उस समय पश्चिमी प्रान्त के ठाकुर तथा जाटों ने अरबी सेना का साथ दिया, जबकि पूर्वी सीमावर्ती जाट कबीलों ने दाहिर सम्राट कासहयोग किया, दोनों में पारस्परिक समझौता हो गया। सिन्ध प्रान्त पर अरब साम्राज्य का अधिकार था किन्तु यहां के राज्यपाल सूबेदार तथा विजेता सरदारों के व्यक्तिगत मतभेदों के कारण खलीफा की शक्ति को 812 ई. में गहरा धक्का लगा, और सिन्ध–प्रान्त के प्रशासक अपने आपको स्वतन्त्र समझने लगे। इस समय कैकन (आधुनिक किलात) और समीपवर्ती भूखण्ड पर जाटों का स्वाधीन राज्य था, जबकि अन्य जाट सिपाही अरत्न नदी के आस पास रहते थे। इन जाट सैनिकों का नेतृत्व मुहम्मद बिन उस्मान के हाथों में था और सेनापति समलू नामक जाट सरदार था। केंकन के जाट लूटमार करके शक्ति संचय कर रहे थे। 834 ई. में जाटों को दबाने का प्रयास किया गया लेकिन सफलता नहीं मिली, जाटों ने अनेक स्थानों पर स्वतन्त्र चौकियां स्थापित की।

सुलतान महमूद गजनवी से जाटों का युद्ध – 997 से 1030 ई.

भारत में जाटों के क्रमिक विकास तथा साहसिक परम्पराओं का क्रम महमूद गजनवी के सत्तरहवें आक्रमण तक अनवरत दृष्टिगोचर होता है। अपने पितासुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद सन् 997 ई. में महमूद गजनबी राज्य का शासक बना। अल्पकाल में ही उसकी गणना एशिया के शक्तिशाली शासकों में होने लगी। उसमें धार्मिक कट्टरता कूट–कूट कर भरी हुई थी। वह धन का लालची एवं इस्लाम धर्म को सम्पूर्ण विश्व में फैलाने का आकांक्षी था – उसने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारतवर्ष पर सन् 1001 से 1027 ई. तक 17 आक्रमण किए और देश से अपार धनराशि लूट कर अपने देश गजनी ले गया तथा असंख्य हिन्दुओं को तलवार की धार पर इस्लामधर्मी बना गया।

गजनवी का भारत पर प्रथम आक्रमण नवम्बर 28, 1001 ई. को राजा जयपाल पर हुआ जो कि उसके पिता का पुराना शत्रु था। इस आक्रमण में वह 5 लाख हिन्दुओं को बन्दी बनाकर गजनी ले गया तथा भारी मात्रा में धनराशि ले गया। द्वितीय आक्रमण में उसका पाला फिर जाटों से पड़ गया। वह सन् 1004 ई. में राजा विजयराव पर चढ़ आया। उस राजा की वीरता और रण कौशलता के बारे में 'गजनवी जहाद' में हसन निजामी को मजबूरन लिखना पड़ा – 'राजा ने गजनवी का मुकाबला बड़ी बहादुरी से किया। दोनों में तीन दिन तक युद्ध होता रहा, विजयराव की सेना के वीरता एवं साहस के साथ लड़े जाने पर इस्लामियों के छक्के छूट गये।'

इस युद्ध में ही तो गजनवी को दरगाह खुदा और रसूल के आगे घुटने टेकने पड़े। बेचारे की दाढ़ी पर मिन्नत के समय टप-टप आँसू गिरते थे। गजनी उसे बहुत दूर दिखाई देती थी। विजयराव युद्ध करता वीरगति को प्राप्त हुआ। सन् 1008 ई. में महमूद गजनवी का राजा आनन्दपाल से भी युद्ध हुआ, जिसमें राजा की सेना ने उसका बहादुरी से मुकाबला किया।

सन् 1009 ई. में कांगड़ा के नगर कोट पर विजय प्राप्त कर ली। फिर वह कश्मीर के लोहित जाटों के 'लाहरकोट' की ओर बढ़ा। जाटों ने खूनी संघर्ष में उसके दाँत खट्टे कर दिये तथा उसके आक्रमण को असफल कर दिया। गजनवी ने साहस छोड़ दिया और अपना घेरा उठा कर वापिस आ गया। फरिश्ता लिखता है कि महमूद की असफलता का कारण यह था कि इस दुर्ग की ऊँचाई एवं अद्‌भुत शक्ति अनूठी थी।

योगेन्द्रपाल शास्त्री के अनुसार यदुवंशी जाट महाराजा विजयपाल ने 11वीं शताब्दी में बयाना (आधुनिक भरतपुर का उपखण्ड) को अपनी राजधानी बनाया। वर्तमान बयाना नगर से तीन मील पर्वत पर बना हुआ विजय मन्दिर गढ़ इसी राजा द्वारा बनाया गया है। विजयपाल को गजनवी के भानजे सालार महमूद गाजी से युद्ध करना पड़ा था। इस युद्ध में पहले हार तत्पश्चात् विजय हुई थी। कन्धारी अबूबकर से हुये घनघोर युद्ध में महाराजा की सेना ने इतने अधिक मुस्लिम सैनिकों का वध किया था कि फारसी इतिहासकारों के लेखानेसार यदि तीन मुसलमान और वहाँ मारे जाते तो बयाना और कर्वला युद्ध में कोई अन्तर नहीं रहता। इसी भीषण युद्ध में विजयपाल वीर गति को प्राप्त हुये।

गजनवी का सोमनाथ मन्दिर पर आक्रमण

महमूद गजनवी ने भारत के सुप्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर पर सन् 1025 ई. में आक्रमण किया। मन्दिर की पूजा एवं रक्षा हेतु एक हजार पुजारी थे। हजारों गाने एवं नाचने वाली सुन्दर देव-दासियां वहाँ पर नृत्य करती थी। मन्दिर की रक्षा के लिए राजस्थान के राजपूत राजा वहाँ पहुँच गये थे। इन अन्धविश्वासी लोगों को मन्दिर के महन्त (बड़े पुजारी) ने यह आश्वासन दिया कि युद्ध की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि सोमनाथ जी म्लेच्छ सेना को अन्धा कर देंगे। राजपूत निश्चित होकर सुरा में लीन सुन्दर देव-दासियों के नृत्य में लीन हो गये।

महमूद की सेना ने मन्दिर पर पुर जोर आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष में 5 हजार हिन्दुओं को मार डाला गया। राजपूत सैनिक भाग खड़े हुए। विजयी महमूद ने शिवलिंग की मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े करवा डाले तथा मन्दिर को निर्दयता से लूटा। बहुमूल्य हीरे, जवाहरात, मणि और मोतियों सहित मन्दिर की समस्त सम्पत्ति को लूट लिया जिसका मूल्य दो करोड़ दीनार के समकक्ष था। अलबरूनी लिखता है कि शिवलिंग ठोस सोने की थी। महमूद 20 मन सोने की सांकल और अपार धन ऊंटों पर लादकर वहाँ से चल दिया। जाने से पहले मन्दिर को आग लगवा दी तथा मन्दिर के चन्दन का दरवाजा अपने साथ ले गया।

महमूद जब लूट का माल लेकर सेना सहित सिन्ध मार्ग से गजनी जा रहा था तब सिन्ध के रेगिस्तान में जाटों ने आक्रमण करके उसकी सम्पूर्ण लूट का लगभग आधा भाग छीन लिया।

महमूद घबड़ा गया। उसे गजनी दूर जान पड़ती थी। जाटों से युद्ध करने का साहस छोड़ बैठा तथा मायूस होकर चलता बना और गजनी पहुँच गया। दो वर्ष तक जाटों को मजा चखाने के लिए वह तैयारी करता रहा। जाटों से बदला लेने के लिए उसने बड़ी चतुराई एवं कौशलता से सन् 1027 ई० में चढ़ाई कर दी और लूट का प्रतिशोध उसने उनको पराजित करके लिया।

सुलतान कुतुबउद्दीन एवं जाटवान – 1192 ई०

भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान की पराजय के बाद हरियाणा तथा रोहतक के जाटों में स्वाधीनता की लहर उठी और जाटवान नामक सरदार ने एक सैनिक संगठन तैयार किया। अनेको मॉडलिंक जाट सरदार और जाट सिपाही मुसलमानी सत्ता के विरूद्ध खड़े हो गये और उन्होंने हाँसी को राजधानी बनाने का निश्चय किया। जाटवान ने हांसी किले के मुसलमान सेना–पति नसरत उद्दीन को घेर लिया। जब यह समाचार कुतुबउद्दीन ऐवक को मिला, वह केवल एक रात्रि में 140 मील का रास्ता तय करके घुड़सवार सेना के साथ जाटवान के विरूद्ध जा पहुँचा। जाटवान हांसी का घेरा उठा कर भयंकर संग्राम की लालसा से मैदान में जम गया। मुसलमान सेनापति जाटवीरों का सामना करने के लिए बागड़ प्रदेश की सीमाओं तक पहुँच गया। हसन निजामी लिखता है – ''लोहे के दो पहाड़ों की भांति सेनाओं ने एक दूसरे पर आक्रमण किया, युद्ध भूमि वीरों की रक्तधारा और नरमुण्डों से बहुरंगी पुष्पों की भांति दमक उठी।'' जाट सैनिकों ने भावनात्मक एकता और मान–मर्यादा की रक्षा के लिए जम कर मुकाबला किया। उनके कुशल धावे तथा युद्ध प्रणाली को देखकर स्वयं कृतुबउद्दीन ऐवक घबड़ा उठा। जाटवान स्वयं ऐवक के पास जा पहुँचा और उसने पैदल लड़ने हेतु उसको ललकारा। ऐवक राजी नहीं हुआ। जाट सरदार 'आत्मा के अमरतत्व' में विश्वास करता था। अतः उसे युद्ध भूमि में मृत्यु से भय नहीं था। वह अपने बीस साथियों के साथ शत्रु गोल में घुस गया, लेकिन उसकी चीता चिंन्हित पताका को शक्ति सम्पन्न हाथों ने उतार लिया और भारतीय वीर का रक्त रणभूमि की धूल में मिल गया।

अलाउद्दीन खिलजी और जाट – 1296 से 1316 ई०

खिलजी ने जनता पर अनेक अत्याचार एवं अन्याय करना प्रारम्भ कर दिया। हिन्दुओं पर जजिया कर लगा दिया तथा किसानों की उपज का आधा भाग राजस्व के रूप में वसूल किया जाने लगा। जनता पर अनेक जान लेवा कर थोंप दिये। सर्व खाप पंचायत ने खिलजी के विरूद्ध बगावत का बिगुल बजा दिया। खिलजी ने पंचायत को कुचलने के लिए 25 हजार मुस्लिम सेना के साथ मलिक कपूर को भेजा। काली नदी एवं हिण्डन नदी के मिलाप क्षेत्र में पंचायत की सेना जिसमें अधिसंख्यक जाट थे भयंकर युद्ध हुआ। पंचायत की सेना बड़ी वीरता से लड़ी और खिलजी की सेना को परास्त कर दिया। विवश होकर खिलजी ने जनता पर अत्याचार करना बंद कर दिया और पंचायत की मांगों को मान लिया।

सुलतान मुहम्मद तुगलक – 1330 ई०

सुलतान मुहम्मद बिन तुगलक ने अपने जिद्दी स्वभाव के कारण भूमि का लगान बढ़ा दिया था। समय पर लगान न देने वाले हिन्दू किसानों पर अत्याचार किये गये और उनको बुरी तरह सताया गया। लगान वसूल करने को अत्याचारी मुसलमान फौजदारों की नियुक्ति की गई। जालिम फौजदारों के अमानवीय अत्याचारों का सामना करने तथा धर्म की रक्षा के लिए पटियाला जिले के समाना और सुनाम (भवानीगढ़ तहसील) के आस-पास के जाटों ने मीणा, राजपुत्र, भाटी तथा अन्य स्वजातीय योद्धा किसानों के साथ मिलकर सैनिक संघों का गठन किया। इन सैनिक मण्डलों ने फौजदारों के अत्याचारों का प्रबल विरोध किया और भूमि का लगान रोक कर जिलों में लूटमार अथवा उपद्रव खड़े कर दिये। सुलतान ने इन जाट संघों को कुचलने के लिए सैनिक शक्ति को प्रोत्साहन दिया और विशाल सेना ने जाट मण्डलों को कुचल दिया। साधारण किसान अथवा योद्धा जाटवीरों को विवश होकर इधर-उधर होना पड़ा।

भारत पर तैमूरलंग का आक्रमण – 1398 ई०

तैमूर लंग ने भारत पर सन् 1398 ई० में आक्रमण किया और उसको सर्वप्रथम पंजाब के जाटों से टक्कर लेनी पड़ी। शाह तैमूर ने दस हजार चुने हुये सवारों के साथ जंगलों से भरे मार्गों में होकर अहरूनी से टोहना नामक गांव की ओर कूंच किया। वह अपने विजय संस्मरणों में लिखता है – ''यहां (टोहना) पहुँचने पर मुझे पता लगा कि यहाँ के निवासी बज्र-देहधारी जाति के हैं और यह जाट कहलाते हैं। ये केवल नाम से मुसलमान है लेकिन डकैती और राहजनी में इनके मुकाबिले अन्य कोई जाति नहीं है। यह जाट कबीले सड़कों पर आने जाने वाले कारवाँ को लूटते हैं और इन्होंने मुसलमान अथवा यात्रियों के हृदय में भय उत्पन्न कर दिया है।'' ये वीर जाट आम जनता को नहीं लूटते थे वरन् विदेशी आक्रान्ताओं एवं शाही काफिलों को लूट कर क्रान्ति का शंखनाद करते थे, जिससे विदेशी शासक अत्याचार न करे और शक्ति संचय न कर सके। तैमूर ने अपने संस्मरणों में पूर्वागृह से ग्रसित एवं जाटों से शत्रुता के कारण उनके बारे में अनर्गल शब्द लिखे हैं। टोहना के समीपवर्ती जाट किसान काश्तकारी में प्रवीण अथवा जंगलों के बीच में आबाद गांवों में पशु पालन करते हुये भी स्वच्छन्द मनोवृत्ति में सिद्धहस्त थे। अतः तैमूर लंग ने टोहना पहुंच कर जाट कबीलों के विरूद्ध हिन्दू गक्कर के पुत्र अमीर तोकल बहादुर और मौलाना नासिरूद्दीन के नेतृत्व में सेनायें रवाना की। जाट परिवारों ने उनका मुकावला किया। तुर्क सैनिकों ने जाटों को मौत के घाट उतारा लेकिन जाटों को पराजित नहीं कर सके। प्रथम अभियान में वह सफल नहीं हो सका क्योंकि बहादुर जाटों ने छापामार युद्ध प्रणाली अपनाई थी। उसे आगे अधिक सैनिक शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। शाह तैमूर अपने यात्रा सस्मरणों में पुनः लिखता है – ''यह बात मुझे पुनः बतलाई गई कि जाट कबीले घघ्घर नदी के आसपास विशाल बज्र-देहधारी दानवों की भांति स्वतन्त्रता पूर्वक रहते हैं और टिड्डी दल की तरह चारों ओर बिखरे हैं। मार्ग चलते व्यापारी और राहगीरों के लिए माहमारी है। इनके हाथों से कोई भी बच कर नहीं जा सकता। ये लोग इस समय अपनी रक्षा के लिए जंगल अथवा

रेगिस्तानी इलाकों की ओर चले गये हैं। यद्यपि इनमें से कुछ मारे जा चुके हैं फिर भी मेरी यह निश्चित धारणा है कि अपने अधीन क्षेत्र को मैं भयमुक्त कर दूं। वास्तव में हिन्दुस्तान विजय का मेरा उद्देश्य मूर्तिपूजक हिन्दुओं के विरूद्ध धर्म-युद्ध संचालन करने का रहा है। अतः यह आवश्यक था कि मैं इन जाटों की हस्ती मिटा दूँ।'' तैमूर ने विशाल सेना के साथ पुनः जाटों पर धावा बोल दिया जिसमें दो हजार दैत्याकार जाटों का वध कर दिया, उनकी मवेशी व धन सम्पत्ति को लूटा, तब कहीं जाकर उसे सन्तोष मिला।

सम्राट बाबर – 1525-1530 ई०

मुगल साम्राज्य के संस्थापक बावर ने 1520 ई० को दिल्ली राजधानी बनाया। वह अफगानिस्तान का शासक बन गया था जिसकी राजधानी काबुल थी। उसने भारतवर्ष पर कई आक्रमण किए जो पंजाब तक सीमित रहे। पंजाब में प्रवेश करते ही उसे जाटों का सामना करना पड़ा। बाबर का खानुवा में राणासांगा से युद्ध हुआ जिसके लिए उसने सर्व खाप पंचायत से सहायता मांगी। पंचायत ने 25 हजार सैनिक भिन्न-भिन्न खेपों से भेजे जिसका नेतृत्व जाट महाराजा कीर्तिमल धौलपुर नरेश ने किया। इस भंयकर युद्ध में बाबर की विजय हुई थी। इस युद्ध में कई हजार पंचायती योद्धा सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए।

सर्व खाप पंचायत के इतिहास के अनुसार – ''मुगल बादशाह बाबर सन् 1528 ई. में सर्व खाप पंचायत में गया और उसने कहा – जाट लोग बहुत ईमानदार, पवित्र विचार वाले हैं। हरयाणा सर्व खाप के मल्ल योद्धा तथा यहाँ की पंचायतों के पंच भारतवर्ष में सबसे प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ हैं। मैं सर्ब खापों के पंचों एवं सर्व खाप पंचायत गाँव शोरम को धन्यवाद देता हूँ। मैं शोरम गाँव के चौधरी को एक रूपया सम्मान का और 125 रूपये पगड़ी के भेज के तौर पर जीवन भर देता रहूंगा।''

मुगल बादशाह बाबर की मृत्यु 1530 ई० में हो गई। उसके बाद उसका पुत्र हुमांयू साम्राज्य का शासक बना। हुमांयू ने किसी बात से नाराज हो कर अपने हाकिम मुल्ला शकीवी को ग्राम ढाँढर्स (सोनीपत) को घेरा देकर वरवाद करने का आदेश किया। किन्तु जाट खापों ने मिलकर उस पर भयंकर आक्रमण करके उसकी सेना को वहाँ से खदेड़ दिया। शेरशाह सूरी ने जाट खापों की सहायता से हुमांयू को युद्ध में हराकर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया और सन् 1540 ई० में भारत का सम्राट बन गया। इस प्रकार उसने द्वितीय अफगान राज्य की नींव डाली।

जाट कभी भी मुगल सम्राटों के राजभक्त नहीं रहे बल्कि सदैव उनके विरूद्ध युद्ध करते रहे।

राणा संग्राम सिंह का बयाना पर कब्जा

राणा संग्रामसिंह जब खंडार को जीतते हुए बयाना की ओर कूच कर रहा था उस समय बाबर को आगरा में यह खबर मिल चुकी थी कि राणा साँगा ने हसन

खाँ मेवाती से मिलकर विद्रोह कर दिया है जिसे दबाने के वास्ते बाबर ने एक बड़ी सेना के साथ मिर्जा हिन्दाल और अपने दामाद मोहम्मद मेहँदी ख्वाजा (बयाना का शासक) को भेजा और पीछे से स्वयं भी रवाना हुआ।

रविवार 3 रवि उल आखिर के रोज मेहंदी ख्वाजा ने अपने दूत के माध्यम से बाबर जो उस समय आगरा के एक बाग में हुमायूँ के साथ ठहरा हुआ था को सूचना भेजी कि निस्संदेह राणा साँगा बयाना पर आक्रमण करने वाला है। जब यह समाचार बाबर को 9 जुमादी हिजरी 933 को मिला, उस समय तक राणा साँगा की फौज बयाना की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी। समाचार मिलने के साथ ही बाबर ने मेहँदी ख्वाजा की सहायतार्थ सेना का एक भाग बयाना की ओर रवाना कर दिया। किन्तु इस सेना के पहुँचने से पूर्व ही राणा साँगा ने बयाना दुर्ग को घेर लिया था, जिससे मुगल सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई और दुर्गपति ने राणा की अधीनता स्वीकार कर ली।

बाबर उपरोक्त घटना को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता हुआ अपनी आत्मकथा में लिखता है, ''काफिर की सेना को परेशान करने के उद्देश्य से मैंने सेना का एक भाग बयाना की तरफ भेजा था। तब तक उस काफिर की फौज बयाना आ चुकी थी, मेरे द्वारा भेजी गई सेना, उस समय तक दुर्ग तक नहीं पहुँच पाई। साथ ही दुर्ग की सेना भी बहुत आगे बढ़ चुकी थी, इस सेना ने भी कोई सावधानी नहीं बरती। परिणामस्वरूप शत्रु की सेना अचानक उन पर टूट पडी और हमारी फौज को बिल्कुल हरा दिया।''

उपरोक्त क्रम में कविराज श्यामलदास एक अलग ही रहस्य को बतलाते हुए लिखता है कि जब राणा सांगा भारी फौज के साथ बयाना की ओर कूच कर रहा था उस समय बाबर ने रायसैन के राजा सलहदी तंवर के माध्यम से सुलह का प्रयास किया था किन्तु किन्हीं कारणों को लेकर वह सन्धि राणा ने स्वीकार नहीं की, और अन्त में विक्रम सम्वत 1583 चैत कृष्णा 6 यानी 21 फरवरी, 1527 को राणा संग्रामसिंह ने बयाना दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

तलाकनी मस्जिद

वर्तमान में यह शाही कब्रिस्तान कहलाने वाले क्षेत्र के दक्षिण-पश्चिम में एक नाले के ऊपर आबाद है जो कभी वीरान नहीं थी। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि बादशाह बाबर ने भावी युद्ध को फतेह करने के वास्ते इस स्थल पर अपने मालिक से दुआ माँगी और प्रायश्चित के रूप में शराब, जिसका वह आदी था को हमेशा हमेशा के वास्ते छोड़ने के वास्ते दृढ़ संकल्प लिया था। बाबर ने इसी मस्जिद में खड़े होकर प्रायश्चित किया और शराब से सम्बन्धित सभी बर्तन भी यहीं तोड़कर फिंकवाये थे। इसी वजह से इस खंडहर पड़ी छोटी-सी मस्जिद को आज भी तलाकनी मस्जिद के नाम से पुकारा जाता है।

उपरोक्त किम्वदन्ती मात्र कोरी कल्पना है। प्रथम तो बाबर ने इस स्थल का अपनी आत्मजीवनी में कोई जिक्र नहीं किया, द्वितीय, बाबर युद्ध जीतने से पूर्व बयाना आया ही नहीं था। तृतीय, बाबर खानवा युद्ध जीतने से पूर्व जहाँ खूब शराब पीता रहा वहीं 23 जुमाद-उल-अव्वल के रोज जब वह घोडे पर बैठकर रणक्षेत्र में व्यवस्थित की गई अपनी फौज

का निरीक्षण कर रहा था (अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के लिए जिसका मनोबल पूरी तरह टूटा जा रहा था) उसने एक धार्मिक उपदेश जैसा भाषण दिया और उसी दौरान अपने सोने-चाँदी के शराब के प्याले और दूसरे बर्तन जो जलसों में जश्न मनाने के काम आते थे, तुड़वा दिये और स्पष्ट घोषणा की कि मैं अब कभी शराब का सेवन नहीं करूँगा। अब मैंने अपने मन को शुद्ध कर लिया है।

यह सारी कार्यवाही फतेहपुर सीकरी कहलाने वाले उस स्थल की है जहाँ यह भावी युद्ध के लिए राणा साँगा के विरूद्ध मोर्चा जमा रहा था। कहते हैं शराब छोडने के उस स्थल पर बाबर ने एक बावड़ी का निर्माण भी करवाया जो अक्टूबर, 1528 को पूर्ण हुई।

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि बाबर ने बयाना की किसी मस्जिद में शराब छोडने की शपथ नहीं ली अपितु इस क्षेत्र का सच्चा मुसलमान कभी शराब नहीं पीता था जबकि बाबर अपने अन्तिम समय तक शराब का गुलाम रहा।

तत्कालीन तथ्य यह बतलाते हैं कि यह घटना उस समय की है जब सैनिकों को जोशीले भाषणों के माध्यम से युद्ध के वास्ते उत्साहित किया जा रहा था। परन्तु इतना सब नाटक करने के उपरान्त भी सैनिकों से कोई जोशीला और उत्साहवर्द्धक जवाब नहीं मिला तो बाबर ने महजबी आड़ में, एकत्रित सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा ''जो भी संसार में आता है उसका विनाश अवश्य होता है इसलिये अपकीर्ति के साथ जीवित रहने से सम्मान के साथ मरना अच्छा है इसलिये हम सबको एक मन होकर कुरान एवं बीवी-बच्चों की कसम खाकर फातिहा पढ़ कर कहना है कि हममें से कोई भी युद्ध में विमुख होने का विचार नहीं करेगा। खुद ने चाहा तो हम अपना आत्मबलिदान करने से पीछे नहीं हटेंगे।

निर्णायक युद्ध की रणस्थली

यह निर्णायक युद्ध कहाँ हुआ? यह विषय आज तक विवादास्पद बना हुआ है। समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार दूसरा महाभारत कहलाने वाले संग्राम की असली रणभूमि खानुआ नामक गाँव थी इन्हीं तारीखों की नकल करते आधुनिक इतिहासकारों ने भी सन् 1527 के युद्ध का क्षेत्र उसी खानुआ की मैदानी भूमि को स्वीकार किया है किन्तु यह बात निम्न तर्को के आधार पर असंगत प्रतीत होती है-

1. राणा संग्रामसिंह के राज्य की पूर्वी सीमा राजपूताने के रूपवास नामक कस्बे के अन्तिम गांव खानुआ तक थी जहाँ राणा ने अपनी सुरक्षा चौकी के नाम पर गढ़ीनुमा भवन बनवाया हुआ था जिसे युद्धोपरान्त बाबर ने भूमिसात् करवा दिया था।
2. खानुआ दो राजपूत राज्यों (सीकरी, चित्तौडगढ़) की सीमा पर स्थित रहा।
3. राणा संग्रामसिंह अपने युग का सबसे ज्यादा ताकतवर शासक था। इसलिये इसकी सीमा पर हमला करना सहज बात नहीं थी। हम यदि युद्धस्थली खानुआ को मानते हैं तो इससे यह स्पष्ट होता है कि बाबर ने आगे से आकर राणा पर हमला किया जबकि बाबर उस समय स्वयं की सुरक्षा से बेचैन रहा। इसलिये ही इसने अपने सैनिकों से कहा था कि यदि हम पर

हमला होता है तो सम्मान से मरना हितकर है, युद्ध से मुँह मोडकर भागना ठीक नहीं।

4. भावी युद्ध के वास्ते बाबर ने सीकरी को जहाँ अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया वहीं राणा अपनी भारी फौज के साथ अपनी सीमा पर आ चुका था जहाँ से एक दूसरे स्थानों में अनेक मीलों का अन्तर था।
5. बाबर कहता है कि मैंने पानी और रसद आदि की सुविधा को ध्यान में रखकर ही सीकरी के पास और पहाड़ी के नीचे अपनी सेना को युद्ध के वास्ते तैयार किया।
6. बुलन्द दरवाजे के अन्दर और अन्य कई स्थलों पर मौजूद कब्रो के तकिये स्पष्ट करते हैं कि यह युद्ध ठीक सीकरी के नीचे, अर्थात् सीकरी की सीमान्तर्गत हुआ था जहाँ राजपूतों ने महलों में घुसकर मुगल सैनिकों की हत्यायें की।
7. यह रणनीति रही है कि सशक्त शासक ही दूसरे के घर में घुसकर आक्रमण कर सकता है जिस पर आक्रमण होता है वह अपनी सुरक्षा के विभिन्न उपायों के अन्तर्गत अपने दुर्गों के फाटक बन्द कर लिया करते थे। यहाँ बाबर की सेना पहले से ही बयाना में पिटने से हतोत्साहित थी, इसलिये यह कहना कि बाबर ने आगे बढ़ते हुए राणा कर हमला किया असंगत बात है बल्कि राणा साँगा ने ही खानुआ से आगे चलकर बाबर की सेना पर हमला किया जो सीकरी के नीचे युद्ध के वास्ते तैयार की गई थी।
8. बाबर अपनी जीवनी में लिखता है कि युद्ध जीतने के उपरान्त मैंने काफिरों के सिरों से पहाड़ी पर बड़ी मीनार बनवाई। यह कथन सत्य है क्योंकि यह युद्ध इसी पहाड़ी के नीचे हुआ था। यदि यह युद्ध खानुआ के मैदान में हुआ होता तो क्या बाबर हजारों सिरों को कटवाकर उन्हें लादकर सीकरी की पहाड़ी पर मँगवाता और फिर उनसे मीनार बनवाता, जब वह सीकरी के महलों के अन्दर बुलन्द दरवाजे की भीतर मारे गये मुस्लिम सैनिकों के शवों को ही बाहर निकलवाकर नहीं दफनवा सका तो उन हजारों शवों को कैसे इतनी दूर मँगवाकर मीनार बनवा सकता था? बुलन्द दरवाजे के अन्दर आज भी अनेक कब्रें पड़ी हुई हैं।

उपरोक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट होता है कि महाराणा संग्रामसिंह और मुगल बादशाह बाबर के मध्य जो युद्ध हुआ था वह सीकरी के नीचे झील के पास ही हुआ था न कि खानुआ नामक किसी गांव में।

सीकरी का युद्ध

राणा संग्रामसिंह का बयाना पर अधिकार हो जाने से इस दुर्ग का महत्व एक बार इतना चढ़ गया कि बाबर भी अब सोचने लग गया था कि इसे जीते बगैर दिल्ली तख्त पर बैठना सहज कार्य नहीं। सम्भवत: राणा अब कभी भी आगरा की तरफ कूच कर सकता है। इस चिन्ता ने बाबर की नींद खराब कर दी थी। दूसरे, राणा साँगा के व्यक्तित्व की पूर्ण जानकारी मिल जाने से भी बाबर युद्ध नहीं करना चाहता था किन्तु भावी साम्राज्य की दृढ़ आकाक्षांओं ने इसे भीषण युद्ध के वास्ते प्रेरित किया।

बाबर की सेना पहले ही युद्धों से जहाँ थक चुकी थी वहीं बयाना में जबरदस्त मात खाने से भयातुर थी। उनके चेहरे मलिन और साहस टूटा हुआ था अर्थात् ये लोग अब किसी भी युद्ध में उतरने की तैयार ही नहीं थे जिसमें भी राणा साँगा जैसे वीरान्तर योद्ध से लड़ना, इन्हें साक्षात काल दिखलाई पड़ रहा था।

इधर राणा सांगा बयाना को जीतता हुआ, ब्रह्मबाद रूपवास होते हुए अपने राज्य की अन्तिम सीमा (खानुआ) पर पहुँच गया। कनिंघम लिखता है कि 11 फरवरी 1527 को बाबर आगरा से सीकरी की ओर चला जहाँ उसे समाचार मिला कि राणा दलबल के साथ भुसावर में डेरा डाले हुए है जो सीकरी से मात्र 60 किमी. दूर पश्चिम में है। इधर बाबर ने अपना मोर्चा खेड़ा और मंडी गांवों के मध्य पहाड़ी के नीचे लगाया।

17 फरवरी को बाबर युद्ध की सम्भावनाओं को देखते हुए अपनी सैन्यशक्ति को एकत्रित करने लगा। इसी क्रम में बयाना के मेहँदी ख्वाजा को फौज के साथ आने की खबर भेजी, जो अगले रोज अपनी सेना के साथ बाबर के पास पहुँच गया था।

राणा साँगा की सेना के साथ इस निर्णायक युद्ध में दस बडे राजा अपनी सेनाओं के साथ मौजूद थे जिनमें हसन खाँ मेवाती, इब्राहिम खाँ लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी बाबर के खिलाफ इस युद्ध में सम्मलित हुए थे। इस प्रकार राणा की फौज की कुल संख्या 50-60 हजार के आस-पास थी और बाबर की फौज का अनुमान 30-35 हजार के इर्दगिर्द लगाया जाता है। बाबर के पास सेना कम थी परन्तु दूर तक मार करने वाली बड़ी-बड़ी तोपें उपलब्ध थी जबकि राजपूत लोग इस यंत्र से ही अनभिज्ञ थे।

राणा सांगा की भारी और रक्तपिपासु फौज को देखकर बाबर घबरा गया था। कर्नल टॉड के शब्दों में, बाबर ने एक सन्धि प्रस्ताव राणा के पास भेजा जिसमें लिखा कि सारी शर्ते राणा की होगी जिन्हें बाबर स्वीकार करेगा साथ ही प्रतिवर्ष कुछ टैक्स भी दिया करेगा परंतु तँवर शिलादित्य ने यह सन्धि नहीं होने दी इसलिये अन्त में 16 मार्च, 1527 को युद्ध की घोषणा कर दी गई।

16 मार्च सन् 1527 के दिन बयाना से मात्र 24 किमी. दूर सीकरी के नीचे मैदान में 6 किमी. के फासले पर दोनों सेनायें एकत्रित हो गई और युद्ध का डंका बज उठा। भीषण मारकाट चीख-चिल्लाहटों के स्वर से गूँजने लगे। हजारों राजपूतों की गद्दारी के कारण महाराजा संग्रामसिंह को इस युद्ध में हार का मुँह देखना पड़ा।

17 मार्च को घायल अवस्था में राणा सांगा को रणथम्भौर ले जाने के कारण, बाबर ने अपने को विजयी घोषित करते एक फरमान जारी किया। जिसमें उसने इस युद्ध को धर्म-रक्षार्थ बतलाते हुए अपनी सेना की संख्या, उसको स्थिति एवं राजपूतों की सैन्यशक्ति तथा युद्ध की व्यूह-रचना की जानकारी दी। यह पत्र शेख जोन नामक व्यकित ने लिखा था। इस विजय के साथ ही बाबर के भाग्य का सितारा भारत में चमक उठा।

राणा का अन्तिम समय

इस युद्ध में हसन खाँ मेवाती, एवं पूरब के दोनों चौहान झाला अज्जा राठौड आदि बडे-बडे सरदारों ने वीरगति प्राप्त की। राणा की आँख में तीर लग जाने से वह घायल हो गया था जिसे तुरन्त ही पालकों में डालकर रणथम्भौर ले जाया गया। ''सूरजपाई वीर गति व्या धायल महाराण, बड बूढा भड़ ले गिया रणथंबोरी थाण।'' जहाँ मूर्च्छा के दूर होने पर यह शेर पुनः युद्ध की तैयारी में जुट गया। सेना एकत्रित करने के बाद इसने कूच कर दिया। कालपी नामक स्थान पर जब भावी आक्रमण की तैयारियाँ की जा रही थीं उसी दिन यानी 30 जनवरी, 1528 को इन्हीं राजपूतों में से किसी एक ने जहर देकर राजपूत राष्ट्रीय जागरण के नायक शेर-ए-राजस्थान एवं स्वाधीनता के पावन पुंज को हमेशा हमेशा के वास्ते ढक दिया।

बाबर द्वारा पानीपत और सीकरी मैदानों के लड़े इन युद्धों से अनेक परिणाम निकाले जा सकते है। प्रथम तो दो सुसंगठित शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो गई अर्थात् पानीपत के मैदान में जहाँ अफगानियों की शक्ति नष्ट हुई वहीं इस युद्ध के माध्यम से राजपूतों का संघ छिन्न-भिन्न हो गया। दूसरे शब्दों में, इन युद्धों ने भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की नीवं जमा दी। इसके अलावा इस युद्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात जो सामने आई वह थी राजपूतों की भीतरी घात और वैमन्यस्ता, जिसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि यह जाति दीर्घकाल तक विदेशी जाति की गुलाम बनती रहीं अर्थात् कई सदियों तक ये लोग मुगलों से देश को मुक्त नहीं करा सके बल्कि भविष्य में इसी जाति ने मुगल ताज को चमकाने में, अपना खून बहाने में गर्व महसूस किया जो देश व जाति के वास्ते कलंक की बात थी। सीकरी के युद्ध अथवा कालपी से आरम्भ होने वाले अभियानों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजपूत जमीन, सम्मान देश और धर्म की रक्षा के वास्ते कुछ नहीं कर सकता है।

युद्ध जीतने के बाद बाबर 20 मार्च को बयाना आया, उस समय पूरे रास्तों में हिन्दुओं और इस्लाम को नहीं मानने वालों की लाशों को देखा, जो युद्धस्थली से मेवात तक बिखरी हुई थी। जिनकी यत्र-तत्र मीनारें खड़ी कराई गई। इस युद्ध को जीतने के बाद बाबर ने स्वयं को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित किया। इसकी मृत्यु आगरा में 26 दिसम्बर, 1530 को हुई और इसका शव काबुल में दफनाया गया।

महमूद अली, अजबसिंह भावड़ा

महमूद अली बयाना में बाबर का सेनापति था। इसके महल आज भी भीतरवाड़ी में भग्नावस्था में अवस्थित है। इसका एक प्रधानमंत्री था जिसका नाम अजबसिंह भावड़ा था। वर्तमान भावड़ा गली सम्भवतः इसी के नाम पर आज भी प्रसिद्ध है। बतलाया जाता है कि यह ब्राह्मण जाति का और मूल रूप से यहीं का रहने वाला था। इसने इस मौहल्ले में बड़ी हवेली का निर्माण कराया, जिसमें इसने कुआँ भी बनवाया। उस समय उस हवेली को चौक महल के नाम से पुकारा जाता था। नई खोज और कुएँ में लगे शिलालेख से स्पष्ट है कि गिदौरिया नामक कुएँ का निर्माण इसके द्वारा नहीं कराया गया। इसने आनासागर बावड़ी का निर्माण अवश्य करवाया था। (कनिंघम, भाग 20, पृष्ठ 78)

भावड़ा–यह किसी जाति अथवा गौत्र का प्रतीक नहीं। लोकश्रुतिनुसार जिन लोगों ने किसी भी प्रकार से हिन्दू हितों पर कुठाराघात करते हुए विदेशी आक्रान्ता बाबर का सहयोग किया, सम्भवत: उन्हीं व्यक्तियों को नीचा दिखलाने अथवा समाज में अपमानित करने की दृष्टि से बावरा (पागल) कहा गया, जो कालान्तर में अपभ्रंश होकर भावड़ा हो गया। बाद में इन्हीं अपवादी लोगों में से अजबसिंह जैसा योग्य और साहसी व्यक्ति महमूद अली का प्रधानमंत्री बना। वर्तमान में इसके वंशज भावड़ा उपनाम से प्रसिद्ध हैं।

''राणा संग्रामसिंह जैसा एक व्यक्ति और होता तो, मुगलों के पैर भारत वर्ष में कभी नहीं जमते।''

सम्राट शाहजहाँ के शासन में जाटों का प्रभाव (1628–1660ई०)

पंजाब के मुगल बादशाह बाबर का विरोध करने वाले और बिलग्राम युद्ध (मई 1540 ई०) में पराजित होने के बाद मुगल राजधानी अकबराबाद (आगरा), फतेहपुर–सीकरी तथा जाट प्रधान क्षेत्र में होकर रेवाड़ी की ओर भागते हुए सम्राट हुमांयू, उसके परिवार तथा सैनिकों को लूटने वाले सिनसिनवार, सोगरिया, कुन्तलडूंग सरदार तथा यमुना पार के जाट पालों में स्वाधीनता का सिंहनाद गूँज उठा। सम्राट जहांगीर की मृत्यु 28 अक्टूबर 1627 ई० के समय मुगल साम्राज्य के उत्तराधिकार के लिए संघर्ष छिड़ गया। राज्यारोहण की उथल–पुथल का लाभ उठा कर साम्राज्य की राजधानी अकबराबाद के समीप ब्रज–मण्डल के जाटों ने स्वभावत: शाही राजस्व कर न देकर स्थान–स्थान पर क्षेत्रीय पाल संगठनों का गठन किया। इनमें भारतीयत्व, स्वाधीनता तथा क्षेत्रीय स्वराज्य की प्रबल भावना जागृत हो उठी और 1627 ई. में महावन मुहाल के जाट मजदूर किसान संगठित होकर इधर–उधर लूटमार करने लगे। अप्रेल 1628 ई. में शाहजहां ने जाटों के विद्रोह को दबाने के लिए कासिम खाँ किजवीनी एवं उसकी सहायतार्थ मिर्जा राजा जयसिंह को भेजा। मुगल साम्राज्य के दोनों सेनापति महान परिश्रम एवं फौजी दबाव डालकर भी क्रान्तिकारी जाटों के दिल में धधक रही अन्याय के विरूद्ध बगावत को शान्त नहीं कर सके।

शाहजहाँ की राजस्व नीति का विरोध

सम्राट शाहजहाँ के शासन में जाट शक्ति का विकास क्रान्तिकारी समाज के रूप में हुआ। सम्राट की कठोर मुस्लिम नीति तथा नवीन जागीरदारी एवं मनसबदारी प्रथा की वृद्धि के कारण जाट फिर संगठित हुए। यद्यपि वह अपने पूर्वज अकबर एवं जहांगीर की भांति उदार, सहिष्णु अथवा समन्वयवादी नहीं था। शासन के अन्तिम वर्षों में उसका झुकाव नम्रता के साथ मुस्लिम जाति की ओर हुआ, जिसका लाभ धर्मान्ध सूबेदार और फौजदारों ने उठाया। जागीरदारों द्वारा अधिक लगान की माँग, विभिन्न प्रकार की नवीन करों की वसूली और उनके अत्याचारों के कारण जाट काश्तकारों का पुराना स्वाभिमान जाग उठा। 1635 ई० में जाटों के नेतृत्व में अन्य जातियों ने भी संगठित होकर स्वाधीनता का शंखनाद फूँक दिया तथा चारों ओर अराजकता फैला दी। इसी समय भीम सिनसिनवार की पांचवी पीढ़ी में उत्पन्न रोरियासिंह ने

सिनसिनी मौजा के आसपास ग्रामीण किसान एवं संगोत्री भाइयों को संगठित करके डूंग पंचायत की सरदारी प्राप्त कर ली और व्यापक उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में शाहजहाँ ने जाटों के विद्रोह को कोई महत्व नहीं दिया, अत: जनता ने लगान या अन्य नवीन कर रोक कर विरोध किया। मुगल सरकार ने सहानुभूति पूर्वक विचार की अपेक्षा दमनात्मक रूख अपनाया और ब्रज-मण्डल में अत्याचारों का श्री गणेश किया।

मुर्शिद कुली खां तुर्कमान के वीभत्स अत्याचार

सम्राट शाहजहां ने 1636 ई० में लगान वसूल करने तथा व्रज क्षेत्र में व्याप्त किसानों की क्रान्ति को दबा कर शान्ति व्यवस्था हेतु मुर्शिद कुली खां को कांमा, पहाड़ी, मथुरा तथा महावन परगनों का फौजदार नियुक्त करके भेजा। वह अपनी विशाल सेना के साथ आगरा से मथुरा पहुँचा और उसने इस क्षेत्र में सैनिक चौकियां स्थापित की। सैनिक अभियानों की आड़ में वह कामुक वृत्तियों का दास बन गया, कोई सुन्दर महिला सुरक्षित नहीं थी। उसका रनिवास बड़ा था। जाहिर था कि वह छटा हुआ बदमाश था। कृष्ण के जन्म दिवस पर गोवरधन में हिन्दू नर-नारियों का बहुत बड़ा मेला होता था। यह मुर्शिद कुली खाँ हिन्दुओं की तरह माथे पर तिलक लगा कर और धोती पहन कर उस भीड़ में जा मिलता। ज्यों ही वह किसी सुन्दर स्त्री को देखता, त्यों ही वह उसे ''भेड़ों के रेबड़ पर भेड़िये की तरह झपट कर ले भागता ओर उसे नाव में, जिसे उसके आदमी नदी के किनारे तैयार रखते थे, डालकर तेजी से आगरे की ओर चल पड़ता। हिन्दू बेचारा (शर्म के मारे) किसी को न बताता कि उसकी बेटी का क्या हुआ।'' इस प्रकार का आचरण साम्राज्य के पदाधिकारियों के होने के कारण स्वभावत: विद्रोह तथा द्वेष की भावना ब्रज के जाटों में धधकाने के लिए पर्याप्त थे। ब्रज मण्डल के किसान परिवार ऐसे दुराचारी, लम्पट से बदला लेन को सक्रिय हो गये। वे उसकी सैनिक टुकड़ियों तथा चौकियों पर हमला करने लगे। जाट तुर्कमान की जान के परम शत्रु थे। विद्रोही जाटों के दमन हेतु तुर्कमान ने 1638 ई. में जटबाड़ा नामक एक सुदृढ़ गढ़ी पर आक्रमण किया, परन्तु अवसर पाकर स्वाभिमानी क्रान्तिकारियों ने रात्री के समय मदिरा में चूर तुर्कमान को घेर लिया और उसे मार डाला।

फौजदार मुर्शिद कुली खाँ तुर्कमान की हत्या के बाद 1642 ई. में सम्राट ने इरादत खां को इस क्षेत्र का फौजदार नियुक्त किया। वह इस क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था हेतु अपनी सेनाओं सहित पहुँचा। वह तुर्कमान की तरह दुराचारी एवं धर्मान्ध नहीं था। उसमें उदारता तथा नैतिकता थी। जाटों को आँख दिखा कर या धमकी देकर वश में करना जितना कठिन था, उदारता, दया भाव से वश में करना उतना ही सरल था, यह जानकर ही उसने चार वर्ष 1642-46 ई. तक सैनिक शक्ति की अपेक्षा प्रेम तथा सहनशीलता का जाल फैलाया और स्वाभिमानी किसानों को वश में रख कर ब्रज में शान्ति व्यवस्था बनाने में कीर्ति प्राप्त की।

रौरियासिंह के पौत्र मदू जिसको महाकवि सूदन ने महीपाल तथा 'शाह का उरसाला' (शाहजहाँ के हृदय का काँटा) लिखा है, वीर साहसी तथा क्रान्तिकारी जमींदार था। उसने सिनसिनी मौजा का ठाकुर (मुखिया) पद प्राप्त किया और शाही फौजदार, करोड़ का विरोध

करके डूंग तथा समीपवर्ती अन्य जाट पालों में उचित सम्मान तथा प्रतिष्ठा अर्जित कर ली थी। क्षेत्रीय डूंग तथा पाल सरदार मजदूर किसानों के उत्कर्ष, विकास तथा एकता के लिए अपने चाचा सिंघा के नेतृत्व में एक संगठन तैयार कर लिया। जाट, गूजर, खानजादों मेवाती एवं अन्य क्रान्तिकारी नवयुवकों ने मिलकर आगरा तथा दिल्ली के मध्य खालसा गाँव तथा शाही मार्गो में काफिलों तथा मुगल व्यापारियों के माल को लूटना शुरू किया। क्रान्तिकारियों की तीव्रता, एकता तथा लूटमार के कारण प्रायः शाही मार्ग बन्द हो गये। चारों ओर अराजकता फैल गई। जागीरदार भू-राजस्व वसूल करने में नितान्त असफल रहे। क्रान्ति की व्यापकता से व्यथित होकर सम्राट शाहजहाँ ने 1 जुलाई 1650 ई. को मिर्जा राजा जयसिंह को इन परगनों के क्रान्तिकारियों को कुचलने के लिए नियुक्त किया। सर्व सम्पन्न राजा जयसिंह ने भारी प्रयास किया कि वह क्रान्तिकारी जाटों की शक्ति एवं एकता को तहस-नहस कर दे लेकिन वह सफल नहीं हो सका। लगभग एक वर्ष तक मिर्जा राजा जयसिंह, उसका पुत्र कीरतसिंह तथा कल्याणसिंह नरूका कछवाड़ा राजपूतों की फौजी ताकत के सहारे संघर्ष करते रहे। उन्होंने जाट क्रान्तिकारियों को निकालने, घेर कर बरबाद करने के लिए भयंकर जंगलों को साफ करवाया, कच्ची मिट्टी की गढ़ीयों को गिराया। मदूसिंह तथा उसके चाचा सिंघा ने अन्य मेवातियों के साथ जमकर संघर्ष किया और एक-एक इन्च भूमि पर जम कर लड़े। लम्बे संघर्ष के बाद भी हर शक्ति से लैस शाहजहाँ का दरवारी राजपूत राजा जाटों में स्फुटित देश भक्ति पूर्ण भावों और कार्यो पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। जाट परिवार पूर्ण स्वतन्त्र रहे और उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए नवीन कच्ची गढ़ियाँ बनाई। संघर्षशील जीवन व्यतीत करते हुये मुगल प्रशासन और उनके बीच घात-प्रतिघात का क्रम चलता रहा। जाटों ने समर्पण करके दासता का सुख मिर्जा राजा जयसिंह की तरह नहीं भोगा, और न यवनों से समझौता करके उत्कृष्ट सम्मान और उच्च मन सबदारी का सपना संजोया है। वे तो साहस और बहादुरी से ब्रज की जनता की शोषण और मुस्लिम धर्मान्धिता से मुक्ति दिलाने के लिए अरनवत संघर्ष करते रहे।

सम्राट औरंगजेब के शासन-काल में जाट-इतिहास

मुगल सम्राट शाहजहाँ की बीमारी (6 सितम्बर 1657 ई.) के साथ ही समस्त भारत में अव्यवस्था फैलने लगी और उसके चारों पुत्र राज्य गद्‌दी पर अधिकार करने के लिए सैनिक शक्ति का प्रयोग करने लगे। इस अराजकता के कारण मानव शान्ति तथा सुरक्षा अस्त व्यस्त हो गई। औरंगजेब 21 जुलाई 1658 ई. को आगरा (शालीमार) के उपवन में मुगल सम्राट की गद्‌दी पर बैठा, लेकिन शाहजहाँ के पुत्रों में साम्राज्य प्राप्ति हेतु चार वर्ष तक देश में भयंकर युद्ध चले। विशाल सेनाओं की भाग दौड़ और चार वर्ष (1658-61ई.) की अनावृष्टि ने जमीदारों, काश्तकारों, मजदूरों की कमर तोड़ दी। अनाज के भाव आस मान छूने लगे, मनुष्यों को अनाज और पशुओं को चारा मिलना दुर्लभ हो गया। ब्रज के विद्रोही जागीरदार, जमीदार तथा काश्तकारों ने अराजकता तथा भूखमरी का भारी लाभ उठाया। शाही सीमाओं के अधिकांश भाग में व्यापारियों, निर्बल किसान तथा यात्रियों से निर्दयता तथा शक्ति के साथ अत्यधिक कर

वसूल किया गया। शाही मार्गो पर अशान्त और भूख से व्याकुल लुटेरों का राज्य हो गया। मथुरा, अलीगढ़ और आगरा सरकार के जाट किसानों ने भी इस अराजकता का लाभ उठाया और वह स्वाधीनता संगठन की ओर प्रवृत हुये।

ठेनुआ गोत्री माखनसिंह के प्रपौत्र सरदार नन्दराम जाट ने यमुना पार के जाटों का नेतृत्व सम्भाला और इस गृह युद्ध, भीषण अकाल, सैनिक शक्ति की व्यस्तता का लाभ उठा कर स्वाधीनता का झण्डा अपने सबल हाथों में उठाया । कोइल, (अलीगढ़), मुरसान, हाथरस और मथुरा परगने के कुछ गांवों पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। जाट किसानों ने क्रान्ति के समय अपने खाली हल की फालों को तलवार का रूप दिया और धन संग्रह व शक्ति-संचय के लिए संगठन खड़ा किया। नन्दराम ने किसानों को शाही लगान तथा अन्य कर अदा करने से रोक दिया। सम्राट औरंगजेब जाटों के विकसित क्रान्ति पूर्ण कार्यो की उपेक्षा नहीं कर सका और उसने 1660 ई. में जाट सरदार नन्दराम को फौजदार की उपाधि देकर तोछीगढ़ परगना का प्रबन्ध सौंप दिया।

औरंगजेब की धार्मिक नीति का ब्रज प्रदेश पर प्रभाव

अकबर के निद्रा जनक जादू, जहांगीर की सुखद उदासीनता तथा शाहजहां की कोमल थपकियों के द्वारा उत्पन्न एक शताब्दी की मायावी निद्रा के बाद हिन्दू भारत यकायक सन्त सम्राट औरंगजेब के पवित्र कार्य कलापों के द्वारा 17वीं शताब्दी के अर्धांश में जागृत कर दिया गया। वह दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान शासक को पृथ्वी पर ईश्वर का दूत मानता था। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' की उक्ति उसके मानस में भली प्रकार जड़े जमाये हुई थी। किन्तु अब जागृत हिन्दू को यह देखकर आश्चर्ययुक्त दु:ख हुआ कि हिन्दुस्तान का निष्पक्ष शासक इस्लाम का युद्धकारी प्रचारक बन गया। उसने पुराने और विस्मृत सभी तरीके फिर से अपना लिए हैं, जजिया कर फिर से लागू कर दिया गया है। शाही देखरेख में मन्दिरों को नष्ट करने तथा मूर्तियों को तोड़ने का काम तेजी के साथ चलता रहा, सभी दिशाओं से गाडियाँ भर-भर कर टूटी हुई मूर्तियाँ आती रही और उन्हें दिल्ली और आगरा की जुम्मा मस्जिदों की सीढ़ियों के नीचे दफनाया जाता रहा। सार्वजनिक पदों से हिन्दू वंचित कर दिए गए, एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा राजस्व विभाग से सभी हिन्दू लिपियों को हटा दिया गया। हिन्दूओं के धार्मिक मेलों पर पाबन्दियाँ लगा दी गई तथा उनके त्यौहारों के सार्वजनिक अनुष्ठानों पर प्रतिबन्ध आरोपित कर दिए गए। मुसलमान व्यापारी सीमा शुल्क से पूर्णत: मुक्त कर दिए गए, जबकि हिन्दुओं पर वह पूर्ववत् बना रहा। हिन्दूओं को बलात् व प्रलोभन द्वारा मुसलमान बनाया जाने लगा। संक्षेप में निष्ठुर हत्या सहित हिन्दू जनों के धर्म को परिवर्तित करवाने के लिए सभी उपाय प्रयुक्त किये गये।

देशव्यापी स्तर पर मन्दिरों को गिराने की आज्ञा देकर, औरंगजेब ने कोई राजनैतिक भूल नहीं की थी, क्योंकि उसके इस कदम का कोई राजनीतिक विरोध नहीं हुआ। मन्दिर विनाश की उस आंधी में स्वतन्त्र-अर्द्ध स्वतन्त्र राजपूत राजाओं की राजधानियों के मन्दिर भी नहीं बचे

थे। मिर्जा राजा जयसिंह की प्रिय राजधानी और कवि बिहारी की कर्मस्थली–आम्बेर के सभी मन्दिर ध्वस्त कर दिए थे।

आज उस बौद्धिक, नैतिक और राजनीतिक अघेगति की कल्पना करके रौंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारा बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक नेतृत्व अर्थात् देश के ब्राह्मण और राजनीतिक शक्ति के प्रतीक राजपूत, इतने निस्तेज हो चुके थे कि औरंगजेब के विरोध में एक ऊंगली तक नहीं उठा सके। इस घटना के दस साल बाद सन् 1679 ई. में अगर औरंगजेब जोधपुर राज्य को हड़पने का प्रयत्न नहीं करता, तो सम्भवतया जोधपुर और मेवाड़ के राजपूतों की आंख भी नहीं खुलती। मारवाड़ में यह आम कहावत हो गई थी–''यदि आसकरण के घर दुर्गादास पैदा नहीं होता, तो सभी का खतना हो गया होता।''

समय के चुनाव में औरंगजेब ने भूल नहीं की थी। उत्तर भारत की राजनीतिक शक्तियों ने अगले दस वर्ष तक चूं नहीं की। इसी प्रकार हिन्दुओं के अग्रणी–तत्कालीन धर्म गुरू ब्राह्मण समुदाय पर नजर डालते हैं तो सिर लज्जा से झुक जाता है। उसने हिन्दुओं के सर्वोच्च नेताओं को भली प्रकार नाप तोल लिया था, अगर औरंगजेब को यह दिखाई देता कि इन मन्दिरों और मूर्तियों की रक्षार्थ और कोई आए न आए, देश के हजारों लाखों ब्राह्मण अपने सिर कटा देंगे तो वह न एक मन्दिर की ओर देखता और न किसी मूर्ति की ओर उंगली उठाता। हिन्दू समाज के तत्कालीन दिवालिएपन ओर शून्य की ओर संकेत करते हुये सर जदुनाथ सरकार ने लिखा है – ''हिन्दुओं के उद्धार के लिए कोई भी ज्ञान–सम्पन्न, देश प्रेमी धर्माचार्य पैदा नहीं हुआ।''

ऐसा भी नहीं था कि उस युग में लोग अपने धार्मिक विश्वास या सत्य की रक्षार्थ कुरबान नहीं हुए। सबसे प्रकाशवान नाम सूफी फकीर मुहम्मद सईद (सरमद) का है, जो अपने सत्य और विश्वास के लिए, बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से अपने प्राण न्यौछावर कर गया। यही बात गुरू तेगबहादुर के बारे में सच है। बोहरा मुसलमानों के धर्मगुरू सैयद कुतुबुद्दीन भी अपने सात सौ अनुयायियों के साथ बलि की वेदी पर चढ़ गये।

शेष रहे हिन्दू जिन्हें औरंगजेब चूहों से ज्यादा महत्व नहीं देता था। घोड़े पर चढ़ने नहीं देता था, हथियार रखने नहीं देता था, पालकी में बैठने नहीं देता था। शिवाजी को 'पहाड़ी चूहा' और शायद जाटो को 'मैदानी चूहा' कहता था।

ईश्वर ने यहीं उसकी मति फेर दी। जैसे रावण वानर–भालुओं को नहीं पहचान सका था, उसी प्रकार औरंगजेब जाट और मराठों को नहीं पहचान सका। सिक्खों का नाम मैं इसलिए नहीं ले रहा हूँ कि उनमें रक्त और जातीयता के अनुपात से अस्सी प्रतिशत जाट है।

औरंगजेब ने हिन्दुओं की आर्थिक कमर तोड़ने के लिए जजिया कर लगाया। आज हम इस कर को इतिहास की पुस्तकों में पढ़ते हैं तो कोई खास अनुभूति नहीं होती, क्योंकि हम उसकी भयावहता को नहीं समझ पाते। उसके गम्भीर प्रहार को समझने के लिए हमें तत्कालीन मुद्रा (करैन्सी) और अर्थव्यवस्था की जानकारी लेनी पड़ेगी। उदाहरणार्थ आज यदि एक मजदूर से यह कहा जाय कि तुझे अपनी दो महीने की कमाई 'अमुक टैक्स' में देनी पड़ेगी, तो वह

कहने वाले को पागल समझेगा और पूछ बैठेगा कि दो महीने तक मेरा परिवार क्या खायेगा ?तात्पर्य यह है कि जजिया कर चुकाने में उस समय एक मजदूर की दो महीने की कमाई शाही खजाने में पहुँच जाती थी। ऊपर से जो घोर अपमान सहना पड़ता था, वह अलग। इसीलिए समकालीन इतिहासकार मनूची ने लिखा है–ऐसे अनेको हिन्दू जो यह 'कर' नहीं दे सकते थे, वे इस 'कर' को वसूल करने वालों द्वारा किए गए अपमानों से छुटकारा पाने के लिए मुसलमान हो गये, और यह सब देखकर औरंगजेब आनन्दित होता था।''

अगर मनूची ने औरंगजेब का वह आनन्द देखा होता जो उसे तीर्थ यात्री कर के नीचे पिसते हिन्दुओं को देख कर आता था, तो वह न जाने क्या लिखता! यह कर जजिया से भी ज्यादा जान लेवा था, उसमें सिर्फ दो महीने की कमाई जाती थी, इसमें चार महीने की स्वाहा हो जाती थी। अगर तीर्थ यात्रा को जाने वाला (श्रमिक वर्ग का) व्यक्ति अकेला नहीं गया, मरणासन्न बैठे मां-बाप को तीर्थ कराने साथ ले गया, तो पूरे वर्ष भर की कमाई औरंगजेब के खजाने में चली जाती थी। तीर्थ करना साधारण बात नहीं थी। तीर्थ यात्रा बड़े-बड़े राजा, महाराजा और सेठ साहूकार ही कर सकते थे।

इसी तरह के कमर तोड़ बोझ और भी थे, कुछ प्रलोभन भी थे। इन सबके नीचे पिसता हुआ, अपमान की मरणान्त पीड़ा भोगता हुआ हिन्दू समाज अपने जीवन की अन्तिम साँसे गिन रहा था। औरंगजेब की सिंह गर्जना चारों ओर गूंज रही थी। बड़े-बड़े छात्रधारियों के रहते हुए,

❑❑❑

वीरवर अमर ज्योति गोकुलसिंह

ब्रज की शस्य श्यामला धरती क्रोध से धधक उठी थी और प्रचण्ड दावानल की तरह उठ खड़े हुए थे, वे जाट किसान, जो उस धरती मां की तरह ही सहन-शील और धैर्यवान होते हैं। अत्याचारों ने उनके धैर्य के अथाह स्त्रोत सोख लिए थे। हिन्दू जातियों में कबूतर की तरह सीधा-सीधा और भोला-भाला समझा जाने वाला जाट, वीरभद्र की तरह रौद्र रूप में खड़ा हो गया था। आँखों से क्रोध की चिनगारी निकल रही थी। यह देख अहंकार में चूर, मुगल बादशाह भय से काँप उठा। वह फरमान-दर-फरमान जाटों का कत्लेआम कर डालने के हुकमनामें लिखने लगा। सिर्फ मुगल ही नहीं, बल्कि राजपूत भी उन आदेशों का पालन करने में जुट गये, परन्तु फिर भी किसी के किये धरे कुछ न हो सका। अन्ततः जाटों की कोपाग्नि में भारत का मुगल साम्राज्य जल गया।

सर यदुनाथ सरकार लिखते हैं-''मुसलमानों की धर्मान्धितापूर्ण नीति के फलस्वरूप मथुरा की पवित्र भूमि पर सदैव ही विशेष आघात होते रहते हैं। दिल्ली से आगरा जाने वाले राजमार्ग पर होने के कारण मथुरा की ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँ के हिन्दुओं को दबाने के लिए औरंगजेब ने अब्दुन्नवी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया।''

1669 ई० में प्रारम्भ में अब्दुन्नवी के सैनिकों के दस्ते मथुरा जनपद में चारों ओर लगान वसूली करने निकल पड़े। अब्दुन्नवी ने पिछले ही वर्ष गोकुलसिंह के पास एक नई छावनी स्थापित की थी। सभी कार्यवाहियों का सदर मुकाम यहीं थी। गोकुलसिंह के आह्वान पर किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया। मुगल सैनिकों ने लूटमार से लेकर किसानों के जानवर तक खोलने शुरू कर दिये, बस संघर्ष प्रारम्भ हो गया। फौजदार के सैनिक दलों पर चौतरफा मार पड़ना शुरू हो गया।

9 अप्रैल 1669 को औरंगजेब का नया फरमान आया - ''काफिरों के मदरसे और मन्दिर गिरा दिये जायें।'' फलतः ब्रज क्षेत्र के कई प्राचीन मन्दिरों और मठों का विनाश कर दिया गया। प्राचीन एतिहासिक निधि, इतिहास की अमूल्य धरोधर, तोड़-फोड़, मुण्ड विहीन, अंग विहीन हजारों की संख्या में सर्वत्र ही छितरा दी गई। हजारों वर्ष पुराने मन्दिर और मठ खण्डहर बन गये, पाठशालाओं में उल्लू बोलने लगे, उत्सव और मेलों के पारम्परिक स्थल सांय-सांय करने लगे। तब रक्त की धारायें भी उफन कर बहने लगी। सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्र में मुगलिया घुड़सवार और गिद्ध चील उड़ते दिखाई देते थे और दिखाई देते थे धुंए के बादल और लपलपाती ज्वालायें।

अब्दुन्नवी ने सिरोहा नामक गांव जा घेरा, गोकुलसिंह भी पास में ही थे, अब्दुन्नवी के सामने जा पहुँचे। मुगलों पर दुतरफा मार पड़ी, फौजदार गोली प्रहार से मारा गया। बचे खुचे मुगल मैदान छोड़ कर भाग गये।

गोकुलसिंह ने सादावाद की मुगल छावनी को लूट कर आग लगा दी। इसका धुंआ और लपटें इतनी ऊँची उठ गई कि आगरा और दिल्ली के महलों में तुरन्त ही दिखाई दे गई। साम्राज्य के बजीर सादुल्ला खाँ की छावनी का नामोनिशान मिट गया था। मथुरा ही नहीं, वरन् आगरा जिले में से भी शाही झण्डे निशान उखड़ कर आगरा शहर और किले में ढेर हो गये थे।

निराश और मृत प्रायः हिन्दुओं में जीवन का संचार हुआ। उन्हें दिखाई दिया कि अपराजेय मुगल शक्ति के विष दन्त तोड़े जा सकते हैं। उन्हें दिखाई दिया अपनी भावी आशाओं का रखवाला, देश एवं धर्म की आन पर मर मिटने वाला वीरवर गोकुलसिंह।

औरंगजेब ने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि राजधानी की नाक के नीचे बसे चूहों ने शाही नाक को कुतर कर वीभत्स बना डाला। भोले किसान, अनपढ़, घास छीलने वाले और हल चलाने वाले जाट इतना कर गुजरेंगे, जो राजनीति और राजलक्ष्मी के स्वामी अनेकों राजा सोचने तक का साहस नहीं जुटा सके। उसके तूरानी, ईरानी और अफगानी वीर सेनापति आगरा शेर की मांद में आ घुसे थे और गोकुलसिंह की दिशा में जाने के नाम पर थर-थर कांपते थे।

मुगल बादशाह ने भंयकर युद्धों का अनुभव रखने वाले सेनापतियों एवं बहादुर लोगों को एकत्रित किया। शफ शिकन खाँ की सहायता के लिए, आगरा के किलेदार राद अन्दाज खां को लाया गया। यह औरंगजेब के परम विश्वस्त लोगों में से एक था। तीन वर्ष पूर्व जब शिवाजी को आगरा में बन्दी बना लिया था, तब औरंगजेब शिवाजी को इसी राद-अन्दाज खाँ के हवाले कर देना चाहता था। जयसिंह के पुत्र रामसिंह के विरोध के कारण वह अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सका। ऐसा लगता था कि ये सभी ईरान के बादशाह से युद्ध करने निकले थे किसानों से नहीं। इन दोनों की सहायतार्थ एक राजपूत सरदार वीरमदेव (ब्रह्मदेव सिसौदिया को भी भेजा गया।)

पाँच माह तक भयंकर युद्ध होते रहे। मुगलों की सभी तैयारियां और चुने हुये सेनापति प्रभावहीन और असफल सिद्ध हुये। क्या सैनिक और क्या सेनापति सभी के ऊपर गोकुलसिंह की वीरता और युद्ध संचालन का आतंक बैठ गया।

अन्त में सितम्बर माह में, बिल्कुल निराश होकर शफ शिकन खां ने गोकुलसिंह के पास सन्धि प्रस्ताव भेजा कि - 1. बादशाह उनको क्षमादान देने के लिए तैयार है। 2. वे लूटा हुआ सभी सामान लौटा दें। 3. वचन दें कि भविष्य में विद्रोह नहीं करेंगे।

गोकुलसिंह ने पूछा - मेरा अपराध क्या है, जो मैं बादशाह से क्षमा मांगू ?तुम्हारे बादशाह को मुझसे क्षमा मांगनी चाहिए, क्योंकि उसने अकारण ही मेरे धर्म का बहुत अपमान किया है, बहुत हानि की है। दूसरे, उसके क्षमादान और मिन्नत का भरोसा इस संसार में कौन करता है ?उसने कुरान को साक्षी बना कर, अपने सगे भाई मुराद से जो वायदे किये थे, उन्हें तुम अच्छी तरह जानते हो। कुरान भी मुराद को कत्ल होने से नहीं बचा सकी। वायदे गये जहन्नुम में।

तुम्हारा मालिक इतना स्वार्थी और नीच है कि उसने न सिर्फ अपने भाईयों और भतीजों की हत्या करवा दी, बल्कि अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुल्तान को भी धीमा जहर देकर मौत के करीब पहुँचा रहा है। उसे अभी तक अपने बेटे की जवानी पर और न उसकी बेगम पर दया आई है। कुतुबशाह की बेटी से पूछना कि उसका ससुर (औरंगजेब) कितना भला आदमी है?वह बेचारी जो दस ग्यारह साल से एक बेवा से भी बदतर जीवन जी रही है, एक पल को यह नहीं भूल सकती कि उसके शौहर की धीमा जहर देकर मारा जा रहा है।....क्षमा-दान! अभी तीन वर्ष पहले शिवाजी को भी क्षमादान मिला था न?कु. रामसिंह न होते तो अब तक परलोक बैठे होते। शिवाजी भाग्यशाली थे कि राजा जयसिंह का हाथ उनके ऊपर था। मुझसे तो आम्बेर का राजा भी बिना बात रूष्ट है।

तुम चाहते हो कि मैं उस सामान को जो मैंने खुले मैदान में अपने बाजुओं के बल पर पाया है, तुम्हारे चालाक बादशाह को लौटा दूँ जिससे हम फिर पंख कटे कबूतर की तरह रह जाय। मैं रहूं न रहूं वह सामान अब मुगलों को नहीं मिलेगा। वह तो तुम्हारी कब्रों के काम आयेगा।

तुम मुझे लुटेरा साबित करना चाहते हो। तुम्हें पता होना चाहिये कि असली लुटेरे तुम्हारे बादशाह और शहजादे है। तुम खानदानी लुटेरे हो, बाहर से आकर मालिक बन कर बैठ गये हो, और हिन्दुस्तान की जनता के धन और अस्मत दोनों को लूट रहे हो। जाओ अपने बादशाह को असली रूप बताना। यह दर्पण भेज रहा हूँ।

''भविष्य के लिये मैं मुगलों को क्या वचन दूँ'' क्योंकि मेरा कोई भविष्य नहीं है। मैं किसी राज्य या जागीर को बचाने के लिए नहीं लड़ रहा हूँ। मैंने हिन्दुस्तान की मान मर्यादा की रक्षा के लिए तलवार उठाई है और यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जब तक बादशाह औरंगजेब तख्त पर है, हिन्दुस्तान की मान मर्यादा खतरे में रहेगी। इसलिए अब हम दोनों में से एक ही रहना है, या तो बादशाह औरंगजेब रहेगा या यह ना चीज गोकुल।''

इसके आगे सन्धि की चर्चा चलाना व्यर्थ था। गोकुल ने कोई गुंजाइस ही नहीं छोडी। औरंगजेब का विचार था कि गोकुलसिंह भी 'राजा' या 'ठाकुर' का खिताब पाकर रीझ जायेगा और हिन्दुस्तान को 'दारूल इस्लाम' बनाने की उनकी योजना आगे बढ़ती रहेगी। लेकिन गोकुलसिंह तो कुछ कर गुजरना चाहता था।

इस उत्तर के बाद गोकुलसिंह एक साधारण जमीदार नहीं रहे, औरंगजेब ने भी इस प्रतिद्वन्दी को पहचानने में भूल नहीं की। अतः औरंगजेब स्वयं एक बड़ी सेना, तोपों और तोपचियों के साथ, अपने इस अभूतपूर्व प्रतिद्वन्दी से निपटने चल पड़ा। परम्परायें और मर्यादा टूटने का यह एक ऐसा ज्वलन्त और प्रेरक उदाहरण है जिधर इतिहासकारों का ध्यान नहीं गया है। उस समय जब के ढाई सौ वर्षो के मुगल इतिहास में, जिसमें महान और असाधारण माने जाने वाले सभी मुगल बादशाह हो चुके थे, कोई मुगल-बादशाह एक साधारण जमीदार या किसान का सामना करने युद्धक्षेत्र में नहीं गया था। मनूची के वृत्तान्त के अनुसार पहले अकबर को जाना पड़ा था और अब औरंगजेब को। यह थी वीरवर गोकुलसिंह की महानता।

दिल्ली से चल कर औरंगजेब 28 नवम्बर 1669 ई. को मथुरा जा पहुँचा और वहीं उसने अपनी छावनी बनाई, वहीं से युद्ध का संचालन करने लगा। जाटों ने बड़े अदम्य साहस और वीरता से युद्ध किया। दिसम्बर 1669 ई. के अन्तिम सप्ताह में तिलपत से 20 मील दूर गोकुलसिंह ने शाही सेनाओं का डट कर सामना किया। जाट दृढ निश्चय और भंयकर क्रोध में सुबह से शाम तक युद्ध करते रहे। भारत के इतिहास में ऐसे युद्ध कम हुये हैं जहाँ कई प्रकार से बाधित और कमजोर पक्ष, इतने शान्त और अडिग धैर्य के साथ लड़ा हो। हल्दी घाटी के युद्ध का निर्णय कुछ ही घन्टों में हो गया था। पानीपत के तीनों युद्ध एक-एक दिन में ही समाप्त हो गये थे, परन्तु वीरवर गोकुलसिंह का युद्ध तीसरे दिन भी चला। इससे बड़ा अनुशासन और क्या हो सकता है?

गोकुलसिंह के पास न तोप थी न जिरहबख्तर से सुसज्जित घुड़सवार सेना और न ही अच्छे हथियार थे। युद्ध तीसरे दिन भी भयंकर हुआ। जाटों का आक्रमण इतना प्रबल था कि शाही सेना के पैर उखड़ गये थे परन्तु तभी हसन अली खां के नेतृत्व में एक नई और ताजा दम मुगल सेना आ गई। इस सेना ने गोकुलसिंह की विजय को पराजय में बदल दिया और बादशाह आलमगीर की इज्जत बचा ली।

जाटों के पैर उखड़ गये परन्तु वे अपने घरों को नहीं भागे। तिलपत की गढ़ी को युद्ध क्षेत्र बनाकर संघर्ष करते रहे लेकिन अन्त में उस गढ़ी का भी पतन हो गया।

तिलपत के पतन के बाद गोकुलसिंह और उनके ताऊ उदयसिंह को सपरिवार बन्दी बना लिया गया। उनके सात हजार साथी भी बन्दी हुए। इन सबको जनवरी 1670 में आगरा लाया गया।

औरंगजेब पहले ही आ चुका था और लाल किले के दीवाने आम में, आश्वस्त होकर, विराजमान था। सभी बन्दियों को उसके सामने पेश किया गया।

औरंगजेब ने उनसे कहा-''जान की खैर चाहते हो तो इस्लाम कबूल कर लो। रसूल के बताये रास्ते पर चलो। बोलो क्या कहते हो इस्लाम या मौत?''

अधिसंख्य जाटों ने कहा-''वास्सा, अगर तेरा खुदा और रसूल का रास्ता वही है, जिस पर तू चल रहा है तो हमें तेरे रास्ते पर हरगिज नहीं चलना?''

औरंगजेब ने गोकुलसिंह और उदयसिंह को डाँटा-तुम इन बेबकूफों को समझाते क्यों नहीं?

गोकुलसिंह क्रोध से अपने होंठ चबाते रहे। उत्तर उदयसिंह ने दिया-इसलिए हुजूर कि मैं भी इन्हीं की तरह बेवकूफ हूँ। इन्हें आप ही समझाइये।

गोकुलसिंह बार-बार अपना सिर और सीना तान देते थे। पीछे से सिपाही बार-बार टहोका मार देते, अदब से, सिर व निगाहें झुकाकर खड़े होने की कहते। तीसरी बार वे भड़क उठे। दीवाने आम की दीवारें उनकी आवाज से काँप उठी-''हरामी, एक घूसें में प्राण निकल जाते, पर....नहीं झुंगा जैसे तू कहता है। बहन-बेटी भगाई हैं तेरे बादशाह की?''

औरंगजेब ने अपने क्रोध पर संयम किया फिर भी पूरी तरह न कर सका। गोकुल से उसने कहा–''अब भी वक्त है, वरना तुम सबके टुकड़े–टुकड़े करके कुत्तों और चील कौओं को खिला दियें जायेंगे और तुम्हारे लड़के–लड़कियों को मुसलमान बना दिया जायेगा।''

गोकुलसिंह के शरीर में एक भूचाल सा उठा। गले से लेकर पैर तक कसी, लोहे की जंजीर तड़तड़ा उठी। भभकते हुए बोले तो दीवाने आम गूंजने लगा–''क्या फिर वे बदजात नहीं रहेंगे! वे सहारा बच्चे तुझ जैसे शरीफजादे से उम्मीद भी क्या कर सकते हैं। थू है तुझ पर। उन्होंने सचमुच दीवाने आम में थूक दिया।''

बादशाह! याद रख, ब्रज के जाटों का बच्चा–बच्चा तुझसे आखिरी दम तक लड़ा है, और यह क्रान्ति रूकने वाली नहीं, तुझे भस्म करके ही ठण्डी होगी। औरंगजेब ने क्रोध में आँखे तिरेरते कहा–''इस बदजात को सजाये मौत दे दो।''

अगले दिन गोकुलसिंह और उदयसिंह को आगरे की कोतवाली पर लाया गया–उसी तरह बंधे हाथ, गले से पैर तक लोहे में जकड़ा शरीर फिर भी किसी देवता की तरह भव्य और दर्शनीय। जन–समूह की सांसे थम गई, आंसू उमड़ पड़े। गोकुलसिंह की सुडौल भुजा पर जब जल्लाद का पहला कुल्हाड़ा चला, तो हजारों का जन–समूह हाहाकार कर उठा। चौड़ी कुल्हाड़ी से छिटकी हुई उनकी दाँयी भुजा चबूतरे पर गिरकर फड़कने लगी।

परन्तु उस वीर का मुख ही नहीं शरीर भी निष्कम्प था। उसने एक निगाह फौव्बारा बन गये कन्धें पर डाली और फिर जल्लादों को देखने लगा कि दूसरा वार करे परन्तु जल्लादों को जल्दी के आदेश नहीं थे। ....दूसरे कुल्हाड़े पर भीड़ के हजारों लोग आर्त्तनाद कर उठे। उनमें हिन्दू और मुसलमान सभी थे। .... अनेकों ने आँखे बन्द कर ली .... अनेक रोते हुए भाग लिए .... कोतवाली के चारों ओर मानों प्रलय हो रही थी। ...... एक को दूसरे का होश नहीं था .... वातावरण में एक ही ध्वनि थी–''हे राम.......या रहीम।''

इधर आगरे में गोकुलसिंह का सिर गिरा, उधर मथुरा में केशवराय जी का मन्दिर। मानों कि दोनों दो शरीर एक प्राण रहे हों। मन्दिर को गिराकर उसके खण्डरों पर एक मस्जिद बनावाई गई।

गोकुलसिंह की मृत्यु के बाद ब्रज प्रदेश के वीर जाट किसानों का सामुहिक आन्दोलन कुछ थमा। मथुरा की संस्कृत तथा हिन्दी भाषा–भाषी पाठशालाओं को गिराया और मथुरा का नाम 'इस्लामाबाद' रखा। इसी वर्ष गोवर्धन पर्वत पर बने मन्दिर को गिराने का आदेश मिला। अत: गोस्वामी दामोदर प्रतिमा को लेकर तिहाड़ नामक गाँव में चले गये और उसे नाथद्वारा (उदयपुर) जाकर प्रस्थापित किया।

❑❑❑

निर्भीक-नेतृत्व राजाराम (1676-77 ई.)

गोकुलसिंह का बलिदान व्यर्थ नहीं गया, उसने जाटों के दिलों में स्वतन्त्रता के नये अंकुरित पौधे को सींचा था। गोकुलसिंह की कीर्ति बनी रही, उसका आदर्श प्रेरणा देता रहा। मुगलों को चैन नहीं लेने दिया गया। विपत्ति के समय जाटों ने असाधारण एकता प्रदर्शित की जबकि साधारण समय में उनकी मुख्य प्रवृति आपस में ही एक दूसरे को उजाड़ने की रहती है। परम्परा से लोकतन्त्रीय, स्वभाव से स्वतन्त्र प्रारम्भिक जाट नेता अपनी शक्ति राज-दरबारों से नहीं, अपितु ग्रामीण क्षेत्र से प्राप्त करते रहे।

जाटवीर गोकुलसिंह की शहादत के 16 वर्ष बाद सिनसिनी (भरतपुर) के जमींदार भज्जासिंह के पुत्र राजाराम के रूप में जाटों में से एक अधिक योग्यता-सम्पन्न नेता का उदय हुआ। उसने अपने गोत्र सिनसिनवार जाटों तथा सोगरिया जाटों के बीच पारस्परिक एकता स्थापित की। सोगरियाओं के इस समय के सबसे सशक्त समृद्ध चौधरी का नाम रामचेहरा था तथा वह सोगर के किले का स्वामी था। सोगर का किला सामरिक दृष्टि से सुदृढ़ एवं अत्यधिक सुरक्षित था। रामचेहरा ने अपने इलाके के अव्यवस्थित लोगों को एक सुगठित सेना का रूप दिया, उन्हें रेजीमेन्टों से संगठित किया, उन्हें तोप-बारूद से लैस किया तथा उन्हें अपने कप्तानों के आदेशों का पालन करना सिखाया। उस समय का यह प्रथम जाट सरदार था जिसने अपनी सेना को इस योग्य बनाया कि उसके लोग शत्रु का हर स्तर पर मुकाबला करने में सक्षम थे। उसने जाट-क्षेत्र के पगडन्डी विहीन जंगलों में अनुकूल ठिकानों पर छोटी-छोटी गढ़ियों का निर्माण किया तथा उन्हें मिट्टी की कच्ची दीवालो से ढका गया ताकि तोपखानों का हमला उन पर कोई असर न डाल सके।

भज्जासिंह एवं ब्रजराज सिंह नामक, सिनसिनवार जाट किसान के पुत्र थे। वे मामूली किसान थे लेकिन ये दोनों भाई अति उदार, दानवीर थे। ब्रजराज और भज्जा दोनों के पास मिलकर एक हल और एक जोड़ी बैल थे। उनके घर पर फूंस का छप्पर था। एक दिन एक भिक्षुक ब्राह्मण सिनसिनी गांव आया। किसी ने भोजन या ठहरने का स्थान नहीं दिया। अन्त में वह इन दो भाइयों के घर पहुँचा। उन्होंने उसे खाना खिलाया और उससे अनुरोध किया कि वह रात उनके छप्पर में ही बितायें। अगले दिन जब ब्राह्मण जाने लगा तब भज्जासिंह उसके पास गया और प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोला, ''हम दक्षिणा दिये बिना आपको अपने घर से नहीं जाने देंगे। ऐसा करना हमारे धर्म के विरूद्ध है। हमारे पास केवल एक जोड़ी बैल है। हम दोनों भाई खुशी से आपको ये बैल अर्पित करते हैं।'' यह बात ब्राह्मण के हृदय को गहराई तक छू गयी और उसके मुंह से आशीर्वाद के रूप में ये शब्द निकल पड़े :-

इत दिल्ली उत आगरौ, वीचहिं तख्त मझार।

सुबस बसियौ सिनसिनी, जहं ब्रज, भज्जा दातार।।

जिसका साधारणतयां अर्थ यह है कि सिनसिनी के सिनसिनवार जाट ईश्वर की कृपा से आगरा और दिल्ली के बीच के प्रदेशों पर राज्य करेंगे। उस दिन से भज्जा और ब्रजराज का भाग्य नक्षत्र चमकने लगा और भज्जासिंह (जिसे भगवत या भगवन्त भी कई स्थानों पर लिखा गया है) का पुत्र राजाराम सिनसिनवार जाटों का सरदार चुना गया। उसकी प्रतिभा बहुमुखी थीं और वह इतिहास में इस तरह प्रसिद्ध हैं कि उसने आगरा के निकट सिकन्दरा में स्थित अकबर के मकबरे को लूटा। उसने वहाँ से अकबर की अस्थियों को कब्र में से निकाला और उन्हें आग में झौंक दिया। वह न केवल दु:साहसी सैनिक था, अपितु उसमें विलक्षण राजनीतिक सूझबूझ भी थी।

राजाराम और रामचेहरा सोगरिया शाही परगने में अपनी उपस्थिति का भान कराने लगे। उन्होंने थोड़े ही दिनों में आगरा जिला में मुगलों की सत्ता को समाप्त कर दिया, सड़कों पर यातायात बन्द कर दिया। आगरा का सूबेदार सफी खाँ को नगर में नजरबन्द सा कर दिया। घमासान युद्ध करके भी नगर का फौजदार मीर अबुल फजल अकबर महान के मकबरे की रक्षा न कर सका। शाहीं मार्गो पर तेजी से बढ़ते हुये जाट उपद्रवों के कारण सम्राट ने 3 मई 1686 ई० को सेनापति खान-ए-जहाँ को राजाराम के विरूद्ध रवाना किया। राजाराम ने इसी समय धौलपुर के निकट प्रसिद्ध तूरानी योद्धा अगहर खान के काफिले पर हमला करके खान को मार डाला और शीघ्र ही जाट शक्ति केन्द्रों सिनसिनी व सोगर को नष्ट कर देने की खान-ए-जहाँ की योजना को करारा जबाव दिया। राजाराम के दु:साहसी तथा खान-ए-जहाँ की विफलता ने सम्राट की चिन्ताओं को बढ़ा दिया, अत: दिसम्बर 1686 ई. में शहजादे बीदरबख्त को जाटों के विरूद्ध सर्वोच्च कमान सौंपकर पहले आमेर के राजा रामसिंह को तथा बाद में उसके उत्तराधिकारी विशनसिंह को मथुरा की फौजदारी स्वीकृत कर उसकी सहायता का आदेश दिया। किन्तु जब तक बीदरबख्त पहुँचता, राजाराम विभिन्न छापामार आक्रमणों तथा भारी लूटमार द्वारा व्यवहारत: आगरा जिले में मुगल सत्ता का अन्त कर चुका था।

अऊ के किले पर आक्रमण

अऊ नामक समृद्ध गांव, आधुनिक डीग नगर के दक्षिण पूर्व में 4 मील पर था। उस गाँव में पुलिस एवं सैन्यदल तैनात था, जिसका काम इस विद्रोही क्षेत्र में लगभग 2,00,000 रूपये वार्षिक माल गुजारी प्राप्त करना और व्यवस्था बनाये रखना था। इस थाने का थानेदार एक विषयोलुप, दुराचारी, काम-शूर था, जिसका नाम था लालवेग। उसकी आँख सब ओर घूमती रहती थी। एक दिन एक अहीर अपनी नयी व्याहता पत्नी के साथ आया और गांव के कुयें के पास कुछ देर विश्राम करने के लिए बैठ गया। लालबेग का भिश्ती उधर से गुजर रहा था। उसका ध्यान उस अहीर युवती की असाधारण सुन्दरता पर गया। उसने तुरन्त अपने मालिक को खबर की और लालवेग ने कुछ सिपाही उस अहीर दम्पत्ति को ले आने को भेज दिये। पुरूष को

तो छोड़ दिया गया, परन्तु उसकी पत्नि को लालवेग के रनिवास मे जाना पड़ा, जैसा कि उस समय आम तौर पर हुआ करता था। छोटे शहर में खबर तेजी से फैलती है और जल्दी ही इस अपहरण की चर्चा राजाराम के कानों में भी पहुँच गई। उसने भारतीय सतीत्व की रक्षा करने का संकल्प कर लिया। उसने अपने साथियों के साथ उस थानें की गढ़ी को घेर लिया और मुगल सैनिकों पर टूट पड़े तथा सैनिकों सहित लालवेग को मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार राजाराम ने अपनी योग्यता प्रभावित कर दी। उसका यश आसपास के परगनों में फैल गया। इस घटना से बाध्य होकर उसे विद्रोही जीवन में प्रवेश करना पड़ा।

सिनसिनवार तथा सोगरिया जाटों का संगठन

आधुनिक भरतपुर शहर के उत्तर पश्चिम में चार मील भयंकर जंगल में सोगर नामक कच्ची मिट्टी की गढ़ी, सोगरवाल जाटों का प्रमुख स्थान था। इन जाटों ने भी अनेक गाँवों की जमीदारी प्राप्त कर ली थी और ओल तथा हेलक परगनों में अपना प्रभुत्व तथा प्रभाव बढ़ाया। ये लोग अत्यन्त लड़ाकू, वीर तथा दु:साहसी थे। इन जाटों का नेतृत्व इस समय रामचेहरा कर रहा था। (कुछ इतिहासकार रामचेहरा को राम की चाहर लिख कर चाहर गोत्री जाट सिद्ध करने का प्रयास करते है, जो उचित नहीं है, क्योंकि सोगर के आस पास सोगरवाल, सिनसिनवार एवं खूंटेलों की ही पाल है, चाहरो की पाल नहीं है, अत वह सोगरिया गोत्री ही जाट था।) राजाराम ने सबसे पहले रामचेहरा से मित्रता की जिससे सिनसिनवार एवं सोगरवाल जाटों का एक मजबूत संगठन हो गया। रामचेहरा ने राजाराम का जीवन भर साथ दिया और सच्चे मित्र का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। इस एकता ने पश्चिमी तटवर्ती (काठेड़) जाट शक्ति को एक माला में पिरो दिया। जाट किसान नव-युवकों ने स्वाधीनता की विजय पताका फहराई और मुगल साम्राज्य की महान शक्ति को चुनौती दी।

राजाराम ने परगना कठूमर में जाटौली थून (जो डीग से दक्षिण पश्चिम में 4 मील पर है), नामक गाँव की जमींदारी सम्भाली और कुछ समय में ही उसने जाटौली थून में रह कर 40 गांवों की जमीदारी प्राप्त की। अब वह इन गांवों का शक्ति सम्पन्न सरदार हो गया था। औरंगजेब जाट आन्दोलन को दबाने में असहाय था, अत: उसने आगरे के सूबेदार हिम्मत खाँ की प्रेरणा से जाटों को दबाने के लिए कड़ाई की अपेक्षा नम्रता का सहारा लिया।

सम्राट औरंगजेब ने राजाराम को दिल्ली आमन्त्रित किया। एम.एफ.ओडायर का कथन है कि ''मुगल दरबार में उपस्थिति होने से पूर्व राजाराम ने सिनसिनवार, सोगरिया, खूंटेल डूंग तथा अन्य पालों की पंचायत की। बुजुर्ग सरदार, जमींदार तथा चौधरियों ने एक स्वर से सम्राट के आमन्त्रण को स्वीकार किया और दिल्ली की प्रिय अथवा अप्रिय घटना के साथ अपने दिल-दिमाग को एक धागे में पिरोया।''

राजाराम का दिल्ली में सत्कार किया गया और विद्रोह बन्द करने के आश्वासन पर उसे मथुरा की गद्दी तथा 575 गांवों की जमींदारी दे दी गई। राजाराम ने इस जागीर से सामयिक लाभ उठाया और यह जागीर जाटों को वरदान तथा मुगल सम्राज्य को काँटों का ताज साबित हुई।

भरतपुर राज्य को 'पट्टा प्रणाली अथवा सैनिक जागीर' के विकास का यह प्रथम चरण था। इससे राजाराम को मात्र सम्मान ही नहीं मिला अपितु उनको सैनिक शक्ति भी प्राप्त हुई, जिससे क्रान्ति, विकास तथा स्वाधीनता की परम्परा का मार्ग प्रशस्त हो गया। यमुना नदी के पश्चिमी भूखण्ड (काठेड़ जन-पद) में आबाद सिनसिनवार, सोगरिया, कुन्तल (खूंटेला) तथा चाहर डूंगों के जाट नवयुवक एक संगठन में बंध गये। राजाराम और रामचेहरा ने वीर साहसी जाटों की नियमित सेना तैयार की, उन्हें आग्नेय शस्त्र तथा बन्दूक आदि देकर पूर्ण सैनिक बनाया। उनको गुरिल्ला युद्ध की शिक्षा दी। मुगलों के कोषों को छीन कर, उसको सुरक्षित रखने के लिए मार्गहीन बीहड़ों के बीच में स्थान-स्थान पर छोटी-छोटी गढ़ियों का निर्माण किया। मुगल तोपखानों से बचने का स्थाई प्रबन्ध किया। धीरे-धीरे सिनसिनी, पैघोंर, सौंख, अवार, पीगौंरा, इन्द्रौली, इकरन, अघापुर, अड़ीग, अछनेरा, गूजर सौंख आदि अनेकों ग्राम गढ़िया इस क्रान्ति के प्रमुख गढ़ बन गये।

महीना-दरमहीना राजाराम अधिकाधिक दबंग होता गया। सन् 1686 ई. में एक तूरानी सेनाध्यक्ष आगा खाँ काबुल से आकर वीजापुर में सम्राट के पास जा रहा था। जब उसका काफिला धौलपुर पहुँचा, तब राजाराम के छापामार दल आगा खां के असावधान सैनिकों पर टूट पड़े। इससे पहले कभी भी किसी ने शाही काफिलों पर इस तरह खुल्लम खुल्ला आक्रमण करने का साहस नहीं किया था। आगा खाँ कई वर्षों से काबुल में था और उसे यह मालूम नहीं था कि शाही परगने में जाटों का खतरा है और उसने प्राथमिक सावधानियां भी नहीं बरती थी। जाटों ने उसका समस्त सामान, घोड़े और माल-असबाव भी छीन लिये। उसने जाटों का मुकाबला करने का प्रयास किया लेकिन वह अस्सी सैनिकों सहित मारा गया।

गोकुलसिंह की हत्या का प्रतिशोध

औरंगजेब ने अपने चाचा अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खां को आगरा (अकबराबाद) का सूबेदार नियुक्त किया और उसके आगरा पहुँचने तक मुजफ्फर खां मुहम्मद बाका को आगरा सूबे का प्रशासनिक अधिकारी नियुक्त किया। राजाराम ने इस परिवर्तन का समुचित लाभ उठाया। उस पर आक्रमण करने आ रहे शाइस्ता खां तथा शहजादा वीदरबख्त के आने से पूर्व ही उसने सिकन्दरा को अपना लक्ष्य बनाया। राजाराम ने अपने विशाल सैनिक दल के साथ मार्च 1688 ई० के अन्तिम सप्ताह में एक रात्रि को, अकबर महान के मकबरा को घेर लिया।

गोकुलसिंह की दर्दनाक हत्या से जाट सरदार राजाराम एवं रामचेहरा सोगरिया में प्रतिशोध की भावना प्रबल हो उठी थी। राजाराम ने अपने मित्र रामचेहरा सोगरिया के साथ तैमूर वशंज अकबर महान की कब्र को खोद कर सम्राट औरंगजेब की क्रोधाग्नि को अशान्त कर दिया। यह मकबरा मुगल वास्तुकला का कोई उत्कृष्ट नमूना नहीं था, परन्तु असंदिग्ध रूप से मुगल प्रभुत्व का एक प्रतीक तो था ही। सिकन्दरा मकबरा का विध्वन्श औरंगजेब कालीन इतिहास में अपना प्रमुख स्थान रखता है। मनूची का कथन है कि ''जाटों ने इस मकबरे के सदर

द्वारों पर लगे काँसे के फाटकों को तोड़ डाला। दीवार, छत तथा फर्श में जड़े हुये अमूल्य रत्न और सोने चाँदी के पत्तरों को उखाड़ लिया। सोने चाँदी के बर्तन, चिराग, मूल्यवान कालीन, गलीचे आदि को ले लिया। जिन वस्तुओं को वहाँ से हटाने में असमर्थ रहे, उनको पूर्णतः तोड़-फोड़ कर नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। अकबर की भूमिगत समाधि को खोदकर उसकी अस्थियों को बाहर निकाल कर अग्नि में झौंक दिया। मकबरे की गुम्बजों को पूरी तरह तोड़ कर जाटों ने शान्ति का श्वास लिया।'' इस प्रकार गोकुलसिंह की हत्या का प्रतिशोध लिया गया।

राजाराम को सैनिक विजय प्राप्त हुई। कुछ इतिहासकार जाटों पर लुटेरेपन और कला विध्वंसक का कलंक लगाते है। यह ठीक है कि राजाराम की धार्मिक जड़ता थी, परन्तु हमें उस काल की मनःस्थिति को भी ध्यान में रखना होगा। औरंगजेब की धार्मिक अन्धता की आंधी ने जो बीज बोये थे, उसके लिए बवंडर की फसल तैयार थी। हिन्दू मन्दिरों के निर्मम विनाश और उसके स्थान पर मस्जिदों के निर्माण से केवल क्रोध और प्रतिशोध की भावना ही उत्पन्न होनी थी। औरंगजेव के इस्लामीकरण के उन्माद ने जाटों को विवश किया कि वे मुगल सत्ता के विरोध में सशस्त्र क्रान्ति का विगुल बजा कर उनको नष्ट करे।

सिकन्दरा आक्रमण के तुरन्त बाद राजाराम और रामचेहरा सोगरिया का ध्यान उत्तर पश्चिम की ओर गया, जहाँ चौहान और शेखावत राजपूत मराणांतक युद्ध में जूझ रहे थे। चौहानों ने राजाराम एवं रामचेहरा से मदद मांगी और वे तुरन्त सहर्ष तैयार हो गये। शेखावतों ने मेवात के फौजदार मुरतिजा खां की सहायता ली। बीजल गांव के पास इनमें घमासान युद्ध हुआ, राजपूतों ने शत्रुता में एक दूसरे से उठकर हाथा-पाई की, दोनों पक्षों में अनेक लोग युद्ध में मारे गये। इस युद्ध ने वास्तव में 'साम्राज्यवादी युद्ध' का रूप ले लिया जिसके परिणामस्वरूप चौहानों की अपेक्षा राजाराम एवं सोगरिया सरदार को साम्राज्यवादी सेनाओं से भयंकर युद्ध करना पड़ा। इस युद्ध में जाट सवार तथा पैदल सैनिकों ने भीषण रण कौशल दिखलाया और शेखावतों को करारी मात दी। युद्ध स्थल में राव राजा अनिरूद्धसिंह घबड़ा गया और अपनी सेना के साथ मैदान छोड़ कर भाग गया।

जाट समर्थित दल की विजय के बाद, रामचेहरा एवं राजाराम सेना का निरीक्षण कर रहे थे, छिपे सैनिकों ने घात लगा कर गोली चलाई जिससे उनका स्वर्गवास हो गया।

इन दोनों की असामयिक मृत्यु से सिनसिनवार और सोगरिया जाटों तथा अन्य जातियों के उनके समर्थकों को भारी आघात पहुँचा। उस समय तक सिनसिनवार जाटों में ज्येष्ठाधिकार का नियम नहीं चला था और यह निर्णय हुआ कि राजाराम के पिता, वयोवृद्ध भज्जासिंह से अनुरोध किया जाय कि वह उनका नेतृत्व ग्रहण करें। भज्जासिंह ने न चाहते हुए भी इसे स्वीकार कर लिया।

अपने यशस्वी परदादा के मकबरे के विध्वंश का समाचार सुनकर औरंगजेब का खून खौल उठा। जाटों को सजा देने और सीधा करने के उद्देश्य से, उसने जाटों के दमन करने के लिए विशनसिंह को नियुक्त किया, जिसका हाल ही में आमेर के राजा के रूप में राज्यभिषेक हुआ था।

राजा विशनसिंह को मथुरा का फौजदार बनाया गया। उसे जाटों का सर्वनाश करने का काम सौंपा गया और पुरस्कार के रूप में सिनसिनी की जागीर देने का वायदा किया गया। विशनसिंह इतना अदूरदर्शी था कि उसने औरंगजेब को यह आश्वासन दे दिया कि वह सिनसिनी को तुरत-फुरत जीत लेगा और शाही परगने में जाट विद्रोह को सदा के लिए समाप्त कर देगा। विशनसिंह यश कमाने के लिए अधीर था, वह अपने पूर्वज मिर्जा राजा मानसिंह का अनुसरण करना चाहता था, जिसने अकबर के शासनकाल में बड़ा नाम कमाया था।

जाटों के दमन के लिए आमेर के राजा एवं वीदरबख्त ने सिनसिनी पर आक्रमण किया। सिनसिनी का घेरा कई महीनों तक पड़ा रहा, निर्भीक जाटों ने शाही सेना को चैन से नहीं रहने दिया। उन्हें मजा चखा दिया, अतः पहला धावा विफल रहा। 1690 ई. के जनवरी माह में दूसरा आक्रमण हुआ, जो सफल रहा। घमासान युद्ध में सैकड़ों सैनिक खेत रहे। भज्जासिंह के कुटुम्ब के कुछ लोग बच निकले और थून तथा सोगर पहुँच गये। उनमें भज्जासिंह के भाई ब्रजराजसिंह का पुत्र और सूरजमल के बाबा का भाई चूड़ामन भी था। हम चूड़ामन के विषय में, जिसे टॉड ने जाट 'सिनसिनेटस' (संकट-वीर देश भक्त) कहा है, आगे और भी बहुत कुछ पढ़ेंगे।

अगले वर्ष 21 मई 1691 ई. में राजा विशनसिंह ने जाटों के दूसरे दुर्ग सोगर पर चढ़ाई की। राजा वहाँ शाही सेना को लेकर गया था। संयोग से उस समय इस छोटे से दुर्ग के दरवाजे उसमें अनाज अन्दर ले जाने के लिए खुले हुये थे, हमलावरों ने इसका लाभ उठाकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उस शताब्दी के अन्त होते-होते उस इलाके की अन्य जाट गढ़ियाँ भी जीत ली गई और ऐसा लगने लगा कि जाट फिर एक बार विस्मृति के गर्भ में डूबने लगे हैं। परन्तु ऐसा होना नहीं था। चूड़ामन के रूप में जाटों को एक ऐसा जन्मजात नेता मिला, जिसके देश हित कार्य गोकुलसिंह, राजाराम और रामचेहरा से भी अधिक आगे बढ़ गये।

❑❑❑

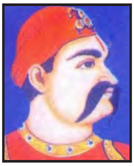

युग-निर्माता, संकट-वीर, देश भक्त ठाकुर चूड़ामन सिंह (1695-1721 ई०)

चूड़ामन सिंह अपने पिता ब्रजराजसिंह का सुयोग्य पुत्र, भावसिंह का भ्राता तथा वीर राजाराम का चचेरा भाई था। इतिहासकारों ने इसको चूड़ामन, चूड़ामणि एवं चूरामन नामों से सम्बोधित किया है। मैं उन्हें चूड़ामन सिंह ही लिखुंगा। चूड़ामनसिंह के पिता ब्रजराज की दो पत्नियाँ थी-इन्द्रकौर तथा अमृतकौर। दोनों ही साधारण जमींदार घरानों से आयी थी। चूड़ामन की माँ, अमृतकौर चिकसाना के, जो आजकल भरतपुर और अछनेरा के अधवीच में है, चौधरी चन्द्रसिंह की पुत्री थी। उसके दो पुत्र और थे-अतिराम और भावसिंह। वे दोनों ही मामूली जमींदार थे। चूड़ामन ने राजाराम के अभियानों में हिस्सा लिया था, ऐसी प्रबल सम्भावना है, लेकिन ऐसी अधिकृत जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं है।

वह एक निर्मम युग था और जाट लोग कठोर जीवन व्यतीत करते थे। वे न दया की आशा रखते थे और न दया करते थे। चूड़ामन सिंह बहुत ही कर्मठ एवं व्यावहारिक व्यक्ति था। उसने जाटों की शक्ति को उन्नत एवं दृढ़ बनाया और उसके समय में हमें पहली बार 'जाट शक्ति' शब्द सुनने को मिलता है। चूड़ामन में नेतृत्व के सभी अपेक्षित गुण विद्यमान थे- मजबूत हृदय, भावुकता रहित मस्तिक, सूझ-बूझ, भाग्य, व्यवहार-कौशल और अत्यधिक व्यक्तिवादी तथा परस्पर विरोधी तत्वों को मिला कर एक करने की क्षमता, जिन्हें एकत्रित कर उसने एक जबरदस्त छापामार लड़ाकू सेना तैयार कर ली थी। उसकी नीति थी-किसी किले या गढ़ी में घिर कर न बैठना, अपितु कुछ मंजे हुये घुड़सवारों को अपने साथ लेकर निरन्तर गतिशील रहना, योजना बना कर प्रतिरोध करना, युद्ध नीति की योजना बनाने, अनुशासन बनाये रखने और एक के बाद एक नया मोर्चा खोलने के लिए निरन्तर चलते फिरते रहना। 'मारो और भागों' की छापामार पद्धति का अनुसरण करना। मुगल काफिले भारी साज सामान से लदे चलते थे, और वे दलदलों तथा जंगलों में भटक जाते थे। जाट लोग थोड़ा सामान लेकर चलते थे और ब्रज तथा दोआब के इलाके से सुपरिचित थे। मुरसान और हाथरस के सरदारों की सहायता से इस सिनसिनवार जाट ने दिल्ली और मथुरा तथा आगरा और धौलपुर के बीच शाही मुख्य मार्ग को बन्द सा ही कर दिया था। केवल शक्तिशाली सशस्त्र रक्षक दलों के साथ जाने वाले लोग ही यहां से बिना लुटे, पिटे निकल पाते थे। चूड़ामन जिस ढंग से काम कर रहा था, उस ढंग से वह कदापि न कर पाता, यदि उसे जनता का, जो औरंगजेब द्वारा शुरू किये गये इस्लामीकरण से घृणा करती थी, समर्थन प्राप्त न होता।

जाट जाति को राजनीतिक महत्व दिलाने वाला वह प्रथम जाट था, जो जाटों द्वारा चुना हुआ नेता था। अब तक चले आ रहे जाट आन्दोलन को उसने अपनी अभूतपूर्व संगठन क्षमता, राजनीतिक विलक्षणता और चतुराई के बल पर एक राज्य की रचना में बदल दिया। सही अर्थों में वह भरतपुर के प्रथम एतिहासिक जाट राज्य का निर्माता था। चूड़ामनसिंह का जीवन-चरित्र स्वतन्त्रता के लिए जाट संघर्ष का ज्वलन्त वृत्तान्त है, जिसका प्रारम्भ सादाबाद के गोकुलसिंह के विद्रोह से हुआ था। चूड़ामन में संगठन की तथा अवसरों का चतुरता पूर्वक लाभ उठाने की प्रतिभा थी। उसके चरित्र में जाटों की हठधर्मी, मराठों की चालाकी और राजनीतिक दूरदर्शिता का सम्मिश्रण था। सत्रहवीं शताब्दी का अन्त होते-होते उसने अपना प्रभाव क्षेत्र बहुत बढ़ा लिया था और अपने अनुयायियों की संख्या भी बढ़ा ली थी, उसने अनुभव भी प्राप्त कर लिया था और उसके पास 10,000 योद्धाओं, बन्दूकचियों, घुड़सवारों और पैदलों की एक सुसज्जित सेना हो गयी थी। उसने कोटा और बूंदी के राजपूत राज्यों पर चढ़ाइयां की। सन् 1704 में उसने सिनसिनी पर फिर अधिकार कर लिया परन्तु अगले वर्ष ही सन् 1705 में आगरा के फौजदार मुख्तार खां का आक्रमण होने पर उसे सिनसिनी छोड़कर पीछे हटना पड़ा। तब वह अपना प्रधान शिविर थून ले गया। थून में उसने सुदृढ़ दुर्ग बनवाया।

चूड़ामन सिंह का नैतिक नीति वचन सोलहवीं शताब्दी के सैयद रफीउद्दीन सैफवी जैसे मुस्लिम धर्मशास्त्रियों से लिया गया था, जिन्होंने मुसलमानों को यह सिखाया था कि काफिर के ऊपर कभी विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। चूड़ामन ने अनेक मुसलमानों के साथ काम किया था, उनके साथ लड़ाइयां लड़ी थी, परन्तु वह किसी के भी साथ निष्ठावान नहीं रहा। वह कठोर व्यावहारिक राजनीतिक था जिसने स्वामिभक्ति, सम्मान, प्रेम जैसी उत्तम भावना के वशीभूत होकर अपना विवेक नहीं खोया। वस्तुतः उसके हृदय में इन विचारों के लिए स्थान भी नहीं था। तथापि वह ऐसा व्यक्ति था जिसने जाटों की किस्मत का निर्माण किया, उसने जाट शक्ति को 18वीं शताब्दी की उत्तर-भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया-ऐसा स्थान जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।

जाजऊ का युद्ध और शाही दरबार में प्रवेश

सम्राट औरंगजेब की मृत्यु 20 फरवरी 1707 ई० को हो गई। सम्राट की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में आत्मघाती युद्ध हुआ। अवसर की तलाश में रहने वाले चूड़ामन के लिए यह संघर्ष सुविधा जनक रहा। बीच के इन वर्षों में वह मध्याकालीन इंग्लैण्ड के किसी जागीरदार जैसा लगने लगा। उसके सिपाही विशेष प्रकार की वर्दी पहनते थे। जाट फारसी जीवन-पद्धति न सही, फारसी शिष्टाचार अवश्य अपनाने लग गया था।

औरंगजेब के दो पुत्रों आजम और मुअज्जम 'शाह आलम प्रथम' के मध्य 8 जून 1707 ई० को जाट क्षेत्र जाजऊ में युद्ध हुआ जो आगरा के दक्षिण में 20 मील पर था। इस समय चूड़ामन अपने वीर सैनिकों के साथ युद्ध का रूख देखता रहा और आक्रमण के लिए उचित

अवसर की तलाश करता रहा। पहले उसने मुअज्जम की सेना को लूटा, जब उसने देखा कि आजम हारने लगा है तब मौके का फायदा उठाकर आजम पर टूट पड़ा और उसके कैम्प को लूट लिया। इस लूट में चूड़ामन अत्यधिक धनी बन गया। मुगलों की नकदी, सोना-चांदी, अमूल्य रत्न-जड़ित आभूषण, शस्त्रास्त्र, घोड़े, हाथी और रसद उसके हाथ लगे। इस धन के कारण वह जीवन पर्यन्त आर्थिक चिन्ताओं से बिल्कुल मुक्त रहा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस विपुल सम्पत्ति का कुछ हिस्सा चूड़ामन की आत्म-हत्या के बाद ठाकुर बदनसिंह और महाराजा सूरजमल के खजाने में भी पहुँचा। अब चूड़ामन अपने सैनिकों को वेतन दे सकता था, अपने विरोधियों को धन देकर अपने पक्ष में कर सकता था और आवश्यकतानुसार किले बनवा सकता था। थून का दुर्ग इसी धन से निर्मित किया और सुसज्जित किया गया। जाजऊ के युद्ध में सिनसिनवारों ने जो मदद दी थी, उसके उपलक्ष्य में उन्हें भी सम्राट की ओर से इनाम मिले। बहादुरशाह ने चूड़ामन को 1500 जात और 500 घुड़सवार का मनसब प्रदान किया। विद्रोही को अचानक ही सरकारी कर्मचारी वर्ग में स्थान मिल गया। चूड़ामन बहुत ही पहुँचा हुआ समय पारखी था, शाही सेनाध्यक्ष के अपने नये पद का औचित्य प्रमाणित करने के लिए उसने मुगल सम्राट को मोह लिया। वह सन् 1710-11 ई० में सिक्खों के विरूद्ध अभियान में मुगल सम्राट के साथ गया और 27 फरवरी, 1712 को जब लाहौर में बहादुरशाह की मृत्यु हुई, तब चूड़ामन वहीं था। सिक्खों के विरूद्ध अभियान में वह दिल से साथ नहीं था। सिक्खों में भी बहुत से लोग, भले ही वे नानक के धर्म को मानते थे, उसी जैसे जाट थे।

बेताज का बादशाह चूड़ामन

लाहौर में सम्राट बहादुरशाह की मृत्यु के समय उसके चारों पुत्र उसके पास ही थे। उत्तराधिकार के लिए युद्ध तो होना ही था, वह बड़ी अशोभनीय जल्दबाजी में हुआ, जहांदरशाह ने अपने तीन भाईयों को मार डाला और स्वयं राज सिंहासन पर बैठ गया। बादशाह जहांदरशाह सुरा और सुन्दरी का प्रेमी था। उसे लालकुंवर नाम की एक रखैल के प्रेमी के रूप में स्मरण किया जाता है। यह लालकुंवर बाजारू वैश्या ही थी। ऐसे पतित एवं कपटपूर्ण वातावरण में चूड़ामन जैसे व्यक्ति को चैन कहाँ मिल सकता था?मौका मिलते ही वह राज-दरबार को छोड़कर अपने लोगों और अपनी जागीर की देख भाल करने के लिए आ गया।

चूड़ामनसिंह ने सम्राट की कमजोरी से लाभ उठाया और अपनी जागीर को बढ़ाने में उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त की। उसने मथुरा के पश्चिमी भाग, नगर, कठूमर, नदबई, हेलक परगनों पर बिना विरोध के अधिकार कर लिया। दिल्ली से चम्बल तक आबाद जाट तथा अन्य हिन्दू नागरिकों का वह न्यायधिकारी, जीवन तथा सम्पदा का रक्षक था। उसने मुसलमान नागरिकों का भी सम्मान किया और दो धर्म के अनुयायी बिना किसी भेदभाव के शान्ति-पूर्वक जीवन यापन करने लगे। इस प्रकार मदिरा और मोहिनी के शासन में हिन्दू स्वाधीनता और धर्म की रक्षा में तत्पर जाट सरदार चूड़ामन दृढ़ता सीमान्त प्रदेश से दक्षिण में चम्बल नदी पर्यन्त, पूर्व

में आगरा से पश्चिम में आमेर (जयपुर) राज्य की सीमाओं तक चूड़ामन 'बिना तख्त का राजा' अर्थात् 'बेताज का बादशाह' था। इस क्षेत्र के समस्त जाट, गूजर, मैना, मेवाती, अहीर आदि लड़ाकू जातियों का उसको पूर्ण समर्थन प्राप्त था। किसी भी राज्य क्रान्ति तथा साम्राज्य सत्ता युद्ध में उसके सहयोग तथा सद्‌भावना की उपेक्षा करना अनुचित था।

जब फरूखसियर जहांदरशाह को चुनौती देने के लिए दिल्ली आ पहुँचा, तब जहाँदरशाह ने जाटों से सहायता माँगी। इस समय तक चूड़ामन यमुना के पश्चिमी तट पर रहने वाले जाटों तथा अन्य हिन्दू लोगों का वास्तविक शासक और नियामक बन चुका था। दिल्ली से लेकर चम्बल तक उसका प्रभाव क्षेत्र था और उसके रूख पर ही यह बात निर्भर करती थी कि हिन्दुस्तान के सिंहासन के किसी उम्मीदवार के प्रति इस क्षेत्र की ग्रामीण जनता का व्यवहार मित्रतापूर्ण हो या शत्रुतापूर्ण। जहाँदरशाह के अनुरोध पर चूड़ामन अपने अनुयायियों की एक बड़ी सेना लेकर आगरा तक बढ़ आया। जहाँदरशाह ने उसे एक पोशाक भेंट की और उसे उचित सम्मान दिया। कु० नटरसिंह के लेखानुसार-राज सिंहासन के दावेदार दो निकृष्ट पुरूषों की सेनाओं में 10 जनवरी 1913 को युद्ध हुआ। चूड़ामन ने आनन-फानन में, दोनों पक्षों को बारी-बारी से लूट कर दोनों का ही बोझ हल्का कर दिया और उसके बाद वह थून लौट आया। कुछ ही समय बाद गला घोंट कर जहांदरशाह की हत्या करदी गई और फर्रूखसियार सम्राट बना।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय चूड़ामन का लक्ष्य एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करना था, वह किसी की अधीनता स्वीकार करने को तैयार न था। वह अपने को शक्तिशाली समझता था, क्योंकि बादशाह दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति था तथा शाही दरबार भ्रष्ट था और उसमें आपस में फूट थी। फर्रूखसियर का तेजस्वी सौन्दर्य और शानदार शारीरिक गठन उसकी कायरता और ढुलमुल नीति से बिल्कुल मेल नहीं खाता था, इससे पूर्व कभी भी किसी तेजस्वी शरीर में इससे अधिक अकिंचन आत्मा का निवास न रहा होगा। फर्रूखसियर के शासन के आरम्भ में आगरा के तत्कालीन सूबेदार छबीलाराम ने जाट सरदार की मजबूत गरदन को झुकाने का कठोर परन्तु असफल प्रयास किया था। उसके बाद समसद-उद-दौला खान-ए-दौरा आगरा का सूबेदार बना। वह जाटों के दमन को असंभव मानता था। अतः उसने युद्ध के बजाय समझौता करना अधिक उपयुक्त समझा। उसने सम्राट के साथ चूड़ामन का समझौता कराया, सम्राट ने चूड़ामन को दरबार में आमन्त्रित किया और वह 4000 घुड़सवारों के साथ वहाँ पहुँचा तथा वहाँ उसे वह सम्मान प्राप्त हुआ, जो भरतपुर के राजा के लिए उपयुक्त था। स्वयं खान-ए-दौरा उसे लेकर दीवान-ए-खास तक गया। बादशाह ने उसे दिल्ली के पड़ौस से लेकर चम्बल तक के राजमार्ग की देखभाल का दायित्व सौंपा। प्रो० कानूनगो के अनुसार-'एक भेड़िये को भेड़ों की रेवड़ की निगरानी का काम सौंपा गया था,' इस प्रकार चूड़ामन क्षेत्र का वैध एवं सुव्यवस्थित नियामक बन गया। मुगल शासन ने चूड़ामन को उसके दायित्व में सौंपी गई सड़क पर चलने वाले यातायात पर कर लगाने की अनुमति दे रखी थी। उसने कठोरता से टैक्स वसूल किया। प्रो. कानूनगो के अनुसार-'एक जाट टैक्स संग्रहकर्त्ता,

जैसा एक कहावत में कहा गयाहै, भगवान के क्रोध की अभिव्यक्ति है, उसका पैसा सिर तोड़ देता है जबकि बनिये के 100 रूपये मुश्किल से शरीर को छू पाते हैं।' उसने वास्तविक सत्ता को ही हथिया सा लिया था। बादशाह और उसके दरबारी क्रोध से जलते थे, परन्तु उनमें से किसी में इतना साहस न था कि वह विद्रोही को दण्ड दे सकें।

जाट शक्ति के इतनी तेजी से विकास ने जयपुर के शासक में घबराहट और घृणा की भावनाओं को जन्म दिया। ऐसा होना स्वाभाविक भी था क्योंकि भरतपुर का राज्य जयपुर की सीमान्तों पर स्थित था। औरंगजेब ने राजा विशन सिंह कछवाहा को चूड़ामन के पूर्वजों के दमन हेतु नियुक्त किया था। उस समय से लेकर जाटों और अनेक राजपूत पड़ौसियों के बीच आनुवांशिक लड़ाई चली आ रही थी। अनेक अवसरों पर उच्च मनसव एवं लाभ प्राप्ति हेतु राजपूतों ने मुगल सम्राटों का साथ देकर जाटों से संघर्ष किया था।

थून राज्य के निर्माण की ओर तथा राजपूतों की हार

थून गढ़ी के युद्ध को यदि जाट राजपूत शक्ति परीक्षण कहाँ जाय तो उपयुक्त रहेगा। सम्राट फर्रूखसियर के वजीर सैय्यद अब्दुल्ला खां के परामर्श के बिना ही 15 सितम्बर 1716 ई. को सवाई राजा जयसिंह कछवाहा को जाट विरोधी अभियान की उच्च कमान सम्भालने का नियुक्ति पत्र मिल गया था। 18 सितम्बर को महाराजा जयसिंह की प्रधान छावनी में उसके अंगरक्षक राजपूत सैनिकों के अतिरिक्त दस हजार घुड़सवार तथा पाँच हजार पैदल हाडा, गौरखगारोत राजपूत सैनिक उपस्थिति थे। इनके अतिरिक्त कोटा का महाराज भीमसिंह हाड़ा, नरबर का राजा गजसिंह, विजयसिंह कछवाया (महाराजा जयसिंह का भाई) राव इन्द्रसिंह, व्याजिद खां मेवाती आदि अपनी सेनाओं के साथ उपस्थित थे। इस प्रकार लगभग चालीस हजार बन्दूकची सवार तथा चालीस हजार से अधिक पैदल सैनिकों की विशाल सेना उसकी कमान में थी। उसने कांमा से डीग की सहायक गढ़ी 14 मील दक्षिण में तथा थून की प्रधान गढ़ी 14 मील दक्षिण-पश्चिम में थी को अभियान का आधार बनाया।

चूड़ामन के गुप्तचर दिल्ली में थे जो उसके विरूद्ध षड्यन्त्र की जो योजनायें बन रही थी, उनकी सूचना वे उसे देते रहते थे। सूचना मिलने पर चूड़ामन ने जयसिंह के मुकाबले के लिए एक लम्बे युद्ध की तैयारी की। उसने इतना अनाज, नमक, घी, तम्बाकू, कपड़ा और ईंधन इकट्ठा कर लिया कि वह बीस वर्ष के लिए पर्याप्त थे। सरदार खेमकरन सोगरिय, चूड़ामन का लम्बे समय से सहयोगी बना हुआ था, और वह अनेकों अभियानों में चूड़ामन का साथ देकर मुगलों को अपनी बहादुरी और दरियादिलों से काफी नुकसान पहुँचा चुका था। चूड़ामन ने जिन लोगों से युद्ध में काम नहीं लेना था, उन सब को उसने किले से बाहर भेज दिया, जिससे रसद का अनावश्यक व्यय न हो। किले का घेरा बीसमहीने तक पड़ा रहा और इसका निर्णायक परिणाम कुछ भी न निकला। दिल्ली दरबार में तूरानी और ईरानी गुटों के बीच चल रहे षड्यन्त्र चूड़ामन के लिए रक्षक वरदान सिद्ध हुये। जाटों ने घेरा डालने वालों को चैन से न बैठने दिया।

चूड़ामन ने जयसिंह की उपेक्षा करके सैयद–बन्धुओं से समझौते की बात चलायी और सम्राट ने इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया। थून के घेरे पर शाही खजाने के दो करोड़ रूपये खर्च हो चुके थे, प्राणों और प्रतिष्ठा की जो हानि हुई, वह अतिरिक्त थी। जयसिंह को घेरा उठा लेने का आदेश दे दिया गया। दिखाने को तो उसने इसे अपना अपमान समझा, पर मन ही मन प्रसन्न जयसिंह थून से वापस लौट गया। जयसिंह के हाथ केवल विफलता ही लगी।

सैयद–बन्धु फर्रूखसियर से तंग आ गये थे। उन्होंने उससे पिंड छुड़ाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने पहले तो उसकी आँखे निकलवा दी और बाद में बहुत ही अपमान–पूर्वक उसकी हत्या करवा दी। उस अन्धे पुरूष को वस्तुत: उसके रनिवास में ही गला घोंट कर मार डाला गया।

चूड़ामन सैयद–बन्धुओं के साथ छाया की तरह लगा रहा, जब फर्रूखसियर को अपदस्थ किया गया, तब वह हुसैन अली की सेना के साथ था। बाद में वह उसके साथ सम्राट पद के एक नकली दावेदार नेकूसियर के विरूद्ध अभियान में आगरा गया। नेकूसियर को सैयद–बन्धुओं के शत्रुओं ने सम्राट घोषित कर दिया था। सैयद–बन्धुओं ने चूड़ामन को 'राजा' की उपाधि देने का वायदा किया था, परन्तु उसने इसे लेना इसलिए स्वीकार नहीं किया कि कहीं अन्य जाट सरदारों को उससे ईर्ष्या न होने लगे। उचित समय पर चूड़ामन ने पासा पलटा और वह नये सम्राट मुहम्मदशाह के साथ मिल गया। मुहम्मदशाह ने जाट सरदारों को बड़े–बड़े पारितोषिक दिये, जिन्हें उसने स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसके विचार से अकारण सम्राट से दुश्मनी मोल लेना नासमझी ही होती। परन्तु सन् 1720 में होडल के युद्ध में उसने सैयद अब्दुला और सम्राट के शिविरों पर आक्रमण करके कोष एवं युद्ध सामग्री को छीन लिया। इस आक्रमण से उसे साठ लाख रूपये का माल असबाव प्राप्त हुआ, जिससे थून के घेरे में हुए नुकसान की भरपाई हो गई। अब शाह राह चूड़ामन एक स्वाधीन राजा की तरह व्यवहार एवं आचरण करने लगा। आमेर को दबाये रखने के लिए उसने जोधपुर के अजीतसिंह राठौर से मित्रता कर ली। उसने बुन्देलों की भी सहायता की, परन्तु उसकी छीना–झपटी, उसका निरन्तर पक्ष–परिवर्तन और उसकी अवसरवदिता उन कुछ घनिष्ट कुटुम्बियों के लिए असहनीय होती जा रही थी, जिनके दावों और हितों की वह तिरस्कारपूर्ण अवहेलना कर रहा था।

अपने भाई मानसिंह की मृत्यु के पश्चात् चूड़ामन ने अपने दो भतीजों–बदनसिंह और रूपसिंह को पाला था। चूड़ामन थून में पदासीन था और बदनसिंह सिनसिनी में रहता था। बदनसिंह को अपने चाचा के तौर–तरीके और दुरंगी चालें नापसंद थी। उसका विचार था कि अब वह समय आ गया है, जब जाटों को विद्रोहियों की भांति नहीं, अपितु शासकों की भांति रहना चाहिए। चूड़ामन के पास धन था, राज्य क्षेत्र था और मुगलों की दी हुई उपाधि भी थी। वह क्यों न एक जगह टिक कर बैठ जाये और अपनी जागीरों को सम्भालें ?इस समय जाट दो गुटों में बट गये थे। चूड़ामन और उसके पुत्र मोहकमसिंह के पक्ष में थे–जाट सरदार खेमकरन सोगरिया, विजयराज गड़ासिया, छतरपुर का फौजदार फतहसिंह और ठाकुर तुलाराम, ये सब पुरानी पीढ़ी के जाट सरदार थे। बदनसिंह को फौजदार अनूपसिंह, राजाराम के पुत्र फतहसिंह, गायडू और हलेना के ठाकुरों तथा अन्य जातियों के मुखियाओं का समर्थन प्राप्त था।

जाट-नेतृत्व की महत्वाकांक्षा से ग्रसित बदनसिंह से चूड़ामन के जानी दुश्मन, जयपुर के राजा जयसिंह से भी सम्पर्क बनाया हुआ था। यहाँ इतिहास कुछ गड़बड़ा जाता है - डा.पी. सी. चान्दावत सहित कई इतिहासकार लिखते है कि चूड़ामन के पुत्र मोहकसिंह द्वारा बदनसिंह को कैद कर लिया गया जो विवादास्पद है। मैं प्रो. कानूनगो एवं कु. नटवरसिंह के लेख को ही प्राथमिकता दूंगा जिसमें उन्होंने लिखा है कि अपने क्रोधी पुत्र मोहकमसिंह के कहने पर चूड़ामन अपने जीवन की सबसे भयंकर गलती कर बैठा- एक लचर सा बहाना बना कर चूड़ामन ने बदनसिंह और रूपसिंह को बन्दी बना लिया और उन्हें थून में ला रखा। यह खबर जाट-प्रदेश में आग की तरह फैली और इससे बड़ी बेचैनी हो गयी। सभी जाट-सरदारों ने चूड़ामन पर दबाव डाला कि वह अपने भतीजों को कैद से छोड़ दे। उन्हें छोड़ने के लिए चूड़ामन ने यह शर्त रखी कि बदनसिंह उसका और उसकी नीतियों का विरोध न करे। बदनसिंह इसके लिये तैयार न था। प्रमुख जाट सरदारों ने दबाव डाल कर बदनसिंह एवं रूपसिंह को कारागार से रिहा कराया। बदनसिंह सुरक्षा और सहायता के लिए पहले आगरा और उसके बाद जयसिंह के पास जयपुर चला गया।

मानवीय सम्बन्धों में कम ही बातें ऐसी है, जो अपने पीछे इतना मलवा छोड़ जाती हो जितना कि पारिवारिक कलह छोड़ते हैं। चूड़ामनसिंह ने जो कुछ भी उपलब्ध किया, निर्माण किया, किले बन्दी की ओर जीता, वह सब जल्दी ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाना था-वह भी अन्य किसी के हाथों नहीं, अपितु जयपुर के राजा सवाई जयसिंह के हाथो, और वह भी चूड़ामन के अपने ही भतीजे की सहायता से। इस बार जयसिंह ने काम को पूरा करके ही छोड़ा। उसने थून में हुई बेइज्जती का बदला ले लिया। बदनसिंह के मार्ग-दर्शन में आती हुई आमेर की सेनाओं के थून पहुँचने से पहले ही चूड़ामन ने आत्महत्या कर ली।

उसकी मृत्यु का वृतांत इस प्रकार है-

चूड़ामन का एक सम्पन्न सम्बन्धी जो एक धनी व्यापारी था निःसंतान मर गया था। उसके भाई-बन्धुओं ने चूड़ामन के ज्येष्ठ पुत्र मोहकमसिंह को बुलाया और उसे मृतक की जमींदारी का दायित्व सौंप दिया तथा उसकी समस्त सम्पत्ति भी उसी को दे दी। चूड़ामन के दूसरे पुत्र जुलकरणसिंह ने अपने भाई से कहा, ''मुझे भी उस माल में से हिस्सा दो और हिस्सेदार मानो।'' दोनों भाइयों के बीच में इस मामले को लेकर बड़ी जबरदस्त कहा सुनी हो गई। मोहकमसिंह लड़ने मरने को तैयार हो गया।

जुलकरण भी झगड़ने पर उतारू था, उसने अपने आदमी इकट्ठे किये और अपने भाई पर हमला कर दिया। बड़े-बूढ़ों ने चूड़ामन को खबर भेजी कि उसके बेटे आपस में लड़ रहे हैं, यह अच्छी बात नहीं है। चूड़ामन ने मोहकमसिंह को समझाना चाहा, तो उसने गाली-गलौच शुरू कर दी और प्रकट कर दिया कि वह अपने भाई के साथ-साथ बाप से भी लड़ने को तैयार है। इस पर चूड़ामन आपे से बाहर हो गया और झल्लाकर उसने विष खा लिया, जिसे वह सदा अपने पास इसलिए रखता था कि यदि कभी शत्रु के हाथों बन्दी बन जाय तो उपयोग में लाया जा

सके। विष खाने के बाद, वह घोड़े पर सवार होकर एक वीरान बाग में पहुँचा, एक पेड़ के नीचे लेट गया और मर गया। उसे खोजने के लिए आदमी भेजे गये और उन्होंने उसके शव को ही पाया। कोई भी शत्रु उसे जिस विष को खाने के लिए विवश नहीं कर पाया था, वहीं अब उसके एक मूर्ख तथा उद्धत पुत्र ने उसे खिला दिया। इस प्रकार चूड़ामन फरवरी 1721 में परलोकवासी हुये।

अगले वर्ष थून-गढ़ ले लिया गया। जयसिंह राजा ने चौदह हजार घुड़सवारों के साथ अपना यह अभियान प्रारम्भ किया, जिसमें बाद में पचास हजार घुड़सवार और शामिल हो गये। थून में चूरामन के पुत्रों को घेर लिया गया, उनकी मुख्य प्रतिरक्षा दुर्गम जंगल की एक पेटी थी। आक्रमणकारी जंगल को काट कर दुर्ग के निकट तक पहुँच गये। बदनसिंह ने राजा जयसिंह की सेना का संचालन किया, क्योंकि उसे इस किले के दुर्बल स्थानों का ज्ञान था। 18 नवम्बर, 1722 को थून का पतन हुआ। मोहकमसिंह ने गुप्त रूप से थून से भाग कर अपने पिता के मित्र राजा अजीतसिंह राठौर के यहां जाकर शरण ली।

इस विजय के उपलक्ष्य में जयसिंह को 'राजा-ए, राजेश्वर' की उपाधि मिली। जाटों की सरदारी बदनसिंह ने सम्भाली और चूड़ामन की जमींदारी उसे प्राप्त हुई। बदनसिंह को जयपुर के राजा जयसिंह द्वारा जाटों के प्रधान के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा उसको 'ठाकुर' की उपाधि प्रदान की। वह बढ़िया प्रशासक था और उसके सावधान नेतृत्व में भरतपुर का जाट घराना अगली दो दशाब्दियों तक शान्त, निरन्तर शक्ति संचय करता गया। इस प्रकार जाट-शक्ति की वृद्धि पर यह व्याघात वास्तविक कम और दिखावटी अधिक था।

इतिहासकार चूड़ामनसिंह को डाकू एवं लुटेरा और उसके कार्यों को लूटमार कहते हैं, लेकिन जनता की स्वाधीनता और शोषण से मुक्ति के लिये संघर्ष करने वाले हर विद्रोही को सत्ता और शासन से टकराना पड़ता है, उसका कोष-युद्ध सामग्री एवं माल-असबाव छीनकर अपनी सेना का गठन करना पड़ता है। विश्व में क्रान्ति का यही सजीव इतिहास है। रूस, चीन तथा भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का भी यही इतिहास है। जाट सरदार चूड़ामन को मुगलों तथा राजपूताने के मुगल शासन के चाटुकार सामन्तों के शोषण से ब्रज की जनता को मुक्त कराना था, अत: शक्ति संचय एवं सैन्य संगठन के लिए मुगल अधिकारी तथा काफिलों से धन, शस्त्र तथा युद्ध सामग्री छीननी पड़ी थी। यह लूट नहीं थी, वरन् एक लोकप्रिय क्रान्ति थी। वास्तविक स्वतन्त्रता संग्राम पर दोषारोपण करके उसके महत्व को कम करने का यह प्रयास है। चूड़ामन लोकप्रिय क्रान्ति का एक अग्रदूत था, ऐसी क्रान्ति जिसके पूर्ण होने पर समूचे ब्रज की संस्कृति तथा सम्मान की रक्षा हुई थी। चूड़ामन के कार्यों का वास्तविक मूल्यांकन यदि उस काल और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाए तो वह अवसरोपयोगी राजनीतिक कौशलता का वास्तविक प्रतिनिधि है। चूड़ामन की दृष्टि उत्तरी भारत में एक शक्ति की उद्‌भावना पर पर टिकी थी, ताकि आये दिन की लूटमार, बेइज्जती और मुगलों के शोषण से जनता को मुक्ति दिला सके। इस आधार पर वह एक क्रान्तिकारी तथा महान् देशभक्त प्रमाणित होता है।

❑❑❑